निर्युक्ति साहित्य : एक पुनर्चिन्तन

- प्रो. सागरमल जैन

जिस प्रकार वेदों के शब्दों की व्याख्या के रूप में सर्वप्रथम निरुक्त लिखे गये, सम्भवतः उसी प्रकार जैन परम्परा में आगमों की व्याख्या के लिए सर्वप्रथम निर्युक्तियाँ लिखने का कार्य हुआ। जैन आगमों की व्याख्या के रूप में लिखे गये ग्रन्थों में निर्युक्तियाँ प्राचीनतम हैं। आगमिक व्याख्या साहित्य मुख्य रूप से निम्न पाँच रूप में विभक्त किया जा सकता है -- 1. निर्युक्ति 2. भाष्य 3. चूर्णि 4, संस्कृत वृत्तियाँ एवं टीकाएं और 5. टब्बा अर्थात् आगमिक शब्दों को स्पष्ट करने के लिए प्राचीन मरु-गुर्जर में लिखा गया आगमों का शब्दार्थ। इनके अतिरिक्त सम्प्रति आधुनिक भाषाओं यथा हिन्दी, गुजराती एवं अंग्रेजी में भी आगमों पर व्याख्याएँ लिखी जा रही हैं।

सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान शारपेन्टियर उत्तराध्ययनसूत्र की भूमिका में निर्युक्ति की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए लिखते है कि 'निर्युक्तियाँ मुख्य रूप से केवल विषयसूची का काम करती हैं। वे सभी विस्तारयुक्त घटनाओं को संक्षेप में उल्लिखित करती हैं।'

अनुयोगद्वारसूत्र में निर्युक्तियों के तीन विभाग किये गये हैं --

1. निक्षेप-निर्युक्ति -- इसमें निक्षेपों के आधार पर पारिभापक शब्दों का अर्थ स्पष्ट किया जाता है।

2. उपोद्घात-निर्युक्ति -- इसमें आगम में वर्णित विषय का पूर्वभूमिका के रूप में स्पष्टीकरण किया जाता है।

3. सूत्रस्पर्शिक-निर्युक्ति -- इसमें आगम की विषय-वस्तु का उल्लेख किया जाता है।

प्रो. घाटके इण्डियन हिस्टारीकल क्वार्टरली खण्ड १२पृ२७० में निर्युक्तियों को निम्न तीन विभागों में विभक्त किया है --

1. शुद्ध-निर्युक्तियाँ -- जिनमें काल के प्रभाव से कुछ भी मिश्रण न हुआ हो, जैसे आचारांग और सूत्रकृतांग की निर्युक्तियाँ।

2. मिश्रित किन्तु व्यवच्छेद्य-निर्युक्तियाँ -- जिनमें मूलभाष्यों का समिश्रण हो गया है, तथापि वे व्यवछेद्य हैं, जैसे दशवैकालिक और आवश्यकसूत्र की निर्युक्तियाँ।

3. भाष्य मिश्रित-निर्युक्तियाँ -- वे निर्युक्तियाँ जो आजकल भाष्य या बृहद्भाष्य में ही समाहित हो गयी हैं और उन दोनों को पृथक्-पृथक् करना कठिन है। जैसे निशीथ आदि की निर्युक्तियाँ।

निर्युक्तियाँ वस्तुतः आगमिक परिभाषिक शब्दों एवं आगमिक विषयों के अर्थ को सुनिश्चित करने की एक प्रयत्न हैं। फिर भी निर्युक्तियाँ अति संक्षिप्त हैं, इनमें मात्र आगमिक शब्दों एवं विषयों के अर्थ-संकेत ही हैं, जिन्हें भाष्य और टीकाओं के माध्यम से ही सम्यक् प्रकार से समझा जा सकता है। जैन आगमों की व्याख्या के रूप में जिन निर्युक्तियों का प्रणयन हुआ, वे मुख्यतः प्राकृत गाथाओं में हैं। आवश्यकनिर्युक्ति में निर्युक्ति शब्द का अर्थ और निर्युक्तियों के लिखने का प्रयोजन बताते हुए कहा गया है -- "एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं, अतः कौन सा अर्थ किस प्रसंग में उपयुक्त है, यह निर्णय करना आवश्यक होता है। भगवान महावीर के उपदेश के आधार पर लिखित आगमिक ग्रन्थों में कौन से शब्द का क्या अर्थ है, इसे स्पष्ट करना ही निर्युक्ति का प्रयोजन है।[1]" दूसरे शब्दों में निर्युक्ति जैन परम्परा के पारिभाषिक शब्दों का स्पष्टीकरण है। यहाँ हमें स्मरण रहे कि जैन परम्परा में अनेक शब्द अपने व्युत्पत्तिपरक अर्थ में ग्रहीत न होकर अपने पारिभाषिक अर्थ में ग्रहीत हैं, जैसे -- अस्तिकायों के प्रसंग में धर्म एवं अधर्म शब्द, कर्म सिद्धान्त के सन्दर्भ में प्रयुक्त कर्म शब्द अथवा स्याद्वाद में प्रयुक्त स्यात् शब्द। आचारांग में 'दंसण' (दर्शन) शब्द का जो अर्थ है, उत्तराध्ययन में उसका वही अर्थ नहीं है। दर्शनावरण में दर्शन शब्द का जो अर्थ होता है वही अर्थ दर्शन मोह के सन्दर्भ में नहीं होता है। अतः आगम ग्रन्थों में शब्द के प्रसंगानुसार अर्थ का निर्धारण करने में निर्युक्तियों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।

निर्युक्तियों की व्याख्या-शैली का आधार मुख्य रूप से जैन परम्परा में प्रचलित निक्षेप-पद्धति रही है। जैन परम्परा में वाक्य के अर्थ का निश्चय नयों के आधार पर एवं शब्द के अर्थ का निश्चय निक्षेपों के आधार पर होता है। निक्षेप चार हैं -- नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। इन चार निक्षेपों के आधार पर एक ही शब्द के चार भिन्न अर्थ हो सकते हैं। निक्षेप-पद्धति में शब्द के सम्भावित विविध अर्थों का उल्लेख कर उनमें से अप्रस्तुत अर्थ का निषेध करके प्रस्तुत अर्थ का ग्रहण किया जाता है। उदाहरण के रूप में आवश्यक-निर्युक्ति के प्रारम्भ में अभिनिबोध ज्ञान के चार भेदों के उल्लेख के पश्चात् उनके अर्थों को स्पष्ट करते हुये कहा गया है कि अर्थों (पदार्थों) का ग्रहण अवग्रह है एवं उनके सम्बन्ध में चिन्तन ईहा है।[2] इसी प्रकार निर्युक्तियों में किसी एक शब्द के पर्यायवाची अन्य शब्दों का भी संकलन किया गया है, जैसे -- आभिनिबोधिक शब्द के पर्याय हैं -- ईहा, अपोह, विमर्श, मार्गणा, गवेषणा, संज्ञा, स्मृति, मति एवं प्रज्ञा।[3] निर्युक्तियों की विशेषता यह है कि जहाँ एक ओर वे आगमों के महत्त्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दों के अर्थों को स्पष्ट करती हैं, वहीं आगमों के विभिन्न अध्ययनों और उद्देशकों का संक्षिप्त विवरण भी देती हैं। यद्यपि इस प्रकार की प्रवृत्ति सभी निर्युक्तियों में नहीं है, फिर भी उनमें आगमों के पारिभाषिक शब्दों के अर्थ का तथा उनकी विषय-वस्तु का अति संक्षिप्त परिचय प्राप्त हो जाता है।

प्रमुखनिर्युक्तियाँ

आवश्यकनिर्युक्ति में लेखक ने जिन दस निर्युक्तियों के लिखने की प्रतिज्ञा की थी, वे निम्न हैं[4] --

1. आवश्यक-निर्युक्ति
2. दशवैकालिक-निर्युक्ति
3. उत्तराध्ययन-निर्युक्ति
4. आचारांग-निर्युक्ति
5. सूत्रकृतांग-निर्युक्ति
6. दशाश्रुतस्कंध-निर्युक्ति
7. बृहत्कल्प-निर्युक्ति
8. व्यवहार-निर्युक्ति
9. सूर्य-प्रज्ञप्ति-निर्युक्ति
10. ऋषिभाषित-निर्युक्ति

वर्तमान में उपर्युक्त दस में से आठ ही निर्युक्तियाँ उपलब्ध हैं, अन्तिम दो अनुपलब्ध हैं। आज यह निश्चय कर पाना अति कठिन है कि ये अन्तिम दो निर्युक्तियाँ लिखी भी गयी या नहीं ? क्योंकि हमें कहीं भी ऐसा कोई निर्देश उपलब्ध नहीं होता, जिसके आधार पर हम यह कह सकें कि किसी काल में ये निर्युक्तियाँ रहीं और बाद में विलुप्त हो गयीं। यद्यपि मैंनें अपनी ऋषिभाषित की भूमिका[5] में यह सम्भावना व्यक्त की है कि वर्तमान 'इसीमण्डलत्थू' सम्भवतः ऋषिभाषित निर्युक्ति का परवर्तित रूप हो, किन्तु इस सम्बन्ध में निर्णयात्मक रूप से कुछ भी कहना कठिन है। इन दोनों निर्युक्तियों के सन्दर्भ में हमारे सामने तीन विकल्प हो सकते हैं--

1. सर्वप्रथम यदि हम यह मानें कि इन दसों निर्युक्तियों के लेखक एक ही व्यक्ति हैं और उन्होंने इन निर्युक्तियों की रचना उसी क्रम में की है, जिस क्रम से इनका उल्लेख आवश्यक निर्युक्ति में है, तो ऐसी स्थिति में यह सम्भव है कि वे अपने जीवन-काल में आठ निर्युक्तियों की ही रचना कर पायें हों तथा अन्तिम दो की रचना नहीं कर पायें हों।

2. दूसरे यह भी सम्भव है कि ग्रन्थों के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए प्रथम तो लेखक ने यह प्रतिज्ञा कर ली हो कि वह इन दसों आगम ग्रन्थों पर निर्युक्ति लिखेगा, किन्तु जब उसने इन दोनों आगम ग्रन्थों का अध्ययन कर यह देखा कि सूर्य-प्रज्ञप्ति में जैन-आचार मर्यादाओं के प्रतिकूल कुछ उल्लेख हैं और ऋषिभाषित में नारद, मंखलिगोशाल आदि उन व्यक्तियों के उपदेश संकलित हैं जो जैन परम्परा के लिए विवादास्पद हैं, तो उसने इन पर निर्युक्ति लिखने का विचार स्थगित कर दिया हो।

3. तीसरी सम्भावना यह भी है कि उन्होंने इन दोनों ग्रन्थों पर निर्युक्तियाँ लिखी हों किन्तु इनमें भी विवादित विषयों का उल्लेख होने से इन निर्युक्तियों को पठन-पाठन से बाहर रखा गया हो और फलतः अपनी उपेक्षा के कारण कालक्रम में वे विलुप्त हो गयी हों। यद्यपि यहाँ एक शंका हो सकती है कि, यदि जैन आचार्यों ने विवादित होते हुए भी इन दोनों ग्रन्थों को संरक्षित करके रखा तो उन्होंने इनकी निर्युक्तियों को संरक्षित करके क्यों नहीं रखा ?

4. एक अन्य विकल्प यह भी हो सकता है कि जिस प्रकार दर्शनप्रभावक ग्रन्थ के रूप

में मान्य गोविन्दनिर्युक्ति विलुप्त हो गई है, उसी प्रकार ये निर्युक्तियाँ भी विलुप्त हो गई हों।

निर्युक्ति साहित्य में उपरोक्त दस निर्युक्तियों के अतिरिक्त पिण्डनिर्युक्ति, ओघनिर्युक्ति एवं आराधनानिर्युक्ति को भी समाविष्ट किया जाता है, किन्तु इनमें से पिण्डनिर्युक्ति और ओघनिर्युक्ति कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। पिण्डनिर्युक्ति दशवैकालिक निर्युक्ति का एक भाग है और ओघनिर्युक्ति भी आवश्यक निर्युक्ति का एक अंश है। अतः इन दोनों को स्वतन्त्र निर्युक्ति ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता है। यद्यपि वर्तमान में ये दोनों निर्युक्तियाँ अपने मूल ग्रन्थ से अलग होकर स्वतन्त्र रूप में ही उपलब्ध होती हैं। आचार्य मलयगिरि ने पिण्डनिर्युक्ति को दशवैकालिकनिर्युक्ति का ही एक विभाग माना है, उनके अनुसार दशवैकालिक के पिण्डैषणा नामक पाँचवें अध्ययन पर विशद निर्युक्ति होने से उसको वहाँ से पृथक् करके पिण्डनिर्युक्ति के नाम से एक स्वतन्त्र ग्रन्थ बना दिया गया। मलयगिरि स्पष्ट रूप से कहते हैं कि जहाँ दशवैकालिक निर्युक्ति में लेखक ने नमस्कारपूर्वक प्रारम्भ किया, वही पिण्डनिर्युक्ति में ऐसा नहीं है, अतः पिण्डनिर्युक्ति स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। दशवैकालिकनिर्युक्ति तथा आवश्यकनिर्युक्ति से इन्हें बहुत पहले ही अलग कर दिया गया था। जहाँ तक आराधनानिर्युक्ति का प्रश्न है, श्वेताम्बर साहित्य में तो कहीं भी इसका उल्लेख नहीं है। प्रो. ए.एन. उपाध्ये ने बृहत्कथाकोश की अपनी प्रस्तावना[6] (पृ.31) में मूलाचार की एक गाथा की वसुनन्दी की टीका के आधार पर इस निर्युक्ति का उल्लेख किया है, किन्तु आराधनानिर्युक्ति की उनकी यह कल्पना यथार्थ नहीं है। मूलाचार के टीकाकार वसुनन्दी स्वयं एवं प्रो. ए.एन. उपाध्ये जी मूलाचार की उस गाथा के अर्थ को सम्यक् प्रकार से समझ नहीं पाये हैं।[7]

वह गाथा निम्नानुसार है --

> *"आराहण णिज्जुति मरणविभत्ती य संगहत्थुदिओ।*
> *पच्चक्खाणावसय धम्मकहाओ य एरिसओ।"*
> *[मूलाचार, पंचचारधिकार, 279]*

अर्थात् आराधना, निर्युक्ति, मरणविभक्ति, संग्रहणीसूत्र, स्तुति (वीरस्तुति), प्रत्याख्यान (महाप्रत्याख्यान, आतुरप्रत्याख्यान), आवश्यकसूत्र, धर्मकथा तथा ऐसे अन्य ग्रन्थों का अध्ययन अस्वाध्याय काल में किया जा सकता है। वस्तुतः मूलाचार की इस गाथा के अनुसार आराधना एवं निर्युक्ति ये अलग-अलग स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं। इसमें आराधना से तात्पर्य आराधना नामक प्रकीर्णक अथवा भगवती-आराधना से तथा निर्युक्ति से तात्पर्य आवश्यक आदि सभी निर्युक्तियों से है।

अतः आराधनानिर्युक्ति नामक निर्युक्ति की कल्पना अयथार्थ है। इस निर्युक्ति के अस्तित्व की कोई सूचना अन्यत्र भी नहीं मिलती है और न यह ग्रन्थ ही उपलब्ध होता है। इन दस निर्युक्तियों के अतिरिक्ति आर्य गोविन्द की गोविन्दनिर्युक्ति का भी उल्लेख मिलता है, किन्तु यह भी निर्युक्ति वर्त्तमान में अनुपलब्ध है। इनका उल्लेख नन्दीसूत्र[8], व्यवहार-भाष्य[9], आवश्यकचूर्णि[10] एवं निशीथचूर्णि[11] में मिलता है। इस निर्युक्ति की विषय वस्तु मुख्य रूप से

एकेन्द्रिय अर्थात् पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति आदि में जीवन की सिद्धि करना था। इसे गोविन्द नामक आचार्य ने बनाया था और उनके नाम के आधार पर ही इसका नामकरण हुआ है। कथानकों के अनुसार ये बौद्ध परम्परा से आकर जैन परम्परा में दीक्षित हुए थे। मेरी दृष्टि में यह निर्युक्ति आचारांग के प्रथम अध्ययन और दशवैकालिक के चतुर्थ षट्-जीव निकाय नामक अध्ययन से सम्बन्धित रही होगी और इसका उद्देश्य बौद्धों के विरुद्ध पृथ्वी, पानी आदि में जीवन की सिद्धि करना रहा होगा। यही कारण है इसकी गणना दर्शन प्रभावक ग्रन्थ में की गयी है। संज्ञी-श्रुत के सन्दर्भ में इसका उल्लेख भी यही बताता है।[12]

इसी प्रकार संसक्त निर्युक्ति[13] नामक एक और निर्युक्ति का उल्लेख मिलता है। इसमें 84 आगमों के सम्बन्ध में उल्लेख है। इसमें मात्र 94 गाथाएं हैं। 84 आगमों का उल्लेख होने से विद्वानों ने इसे पर्याप्त परवर्ती एवं विसंगत रचना माना है। अतः इसे प्राचीन निर्युक्ति साहित्य में परिगणित नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार वर्तमान निर्युक्तियाँ दस निर्युक्तियों में समाहित हो जाती है। इनके अतिरिक्त अन्य किसी निर्युक्ति नामक ग्रन्थ की जानकारी हमें नहीं है।

दस निर्युक्तियों का रचना क्रम :

यद्यपि दसों निर्युक्तियाँ एक ही व्यक्ति की रचनायें हैं। फिर भी इनकी रचना एक क्रम में हुई होगी। आवश्यकनिर्युक्ति में जिस क्रम से इन दस निर्युक्तियों का नामोल्लेख है[14] उसी क्रम से उनकी रचना हुई होगी, विद्वानों के इस कथन की पुष्टि निम्न प्रमाणों से होती है --

1. आवश्यकनिर्युक्ति की रचना सर्वप्रथम हुई है, यह तथ्य स्वतः सिद्ध है, क्योंकि इसी निर्युक्ति में सर्वप्रथम दस निर्युक्तियों की रचना करने की प्रतिज्ञा की गयी है और उसमें भी आवश्यक का नामोल्लेख सर्वप्रथम हुआ है।[15] पुनः आवश्यकनिर्युक्ति से निह्नववाद से सम्बन्धित सभी गाथाएं (गाथा 778 से 784 तक)[16] उत्तराध्ययननिर्युक्ति में (गाथा 164 से 178 तक)[17] में ली गयी है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि आवश्यकनिर्युक्ति के बाद ही उत्तराध्ययननिर्युक्ति आदि अन्य निर्युक्तियों की रचना हुई है। आवश्यकनिर्युक्ति के बाद सबसे पहले दशवैकालिकनिर्युक्ति की रचना हुई है और उसके बाद प्रतिज्ञागाथा के क्रमानुसार अन्य निर्युक्तियों की रचना की गई। इस कथन की पुष्टि आगे दिये गये उत्तराध्ययननिर्युक्ति के सन्दर्भों से होती है।

2. उत्तराध्ययननिर्युक्ति गाथा 29 में 'विनय' की व्याख्या करते हुए यह कहा गया है-- 'विणओ पुव्वुद्दिट्ठा' अर्थात् विनय के सम्बन्ध में हम पहले कह चुके हैं।[18] इसका तात्पर्य यह है कि उत्तराध्ययननिर्युक्ति की रचना से पूर्व किसी ऐसी निर्युक्ति की रचना हो चुकी थी, जिसमें विनय सम्बन्धी विवेचन था। यह बात दशवैकालिक निर्युक्ति को देखने से स्पष्ट हो जाती है, क्योंकि दशवैकालिकनिर्युक्ति में विनय समाधि नामक नवें अध्ययन की निर्युक्ति (गाथा 309 से 326 तक) में 'विनय' शब्द की व्याख्या है।[19] इसी प्रकार उत्तराध्ययननिर्युक्ति (गाथा, 207) में 'कामापुव्वुद्दिट्ठा' कहकर यह सूचित किया गया है कि

काम के विषय में पहले विवेचन किया जा चुका है।[20] यह विवेचन भी हमें दशवैकालिकनिर्युक्ति की गाथा 161 से 163 तक में मिल जाता है।[21] उपरोक्त दोनों सूचनाओं के आधार पर यह बात सिद्ध होती है कि उत्तराध्ययननिर्युक्ति दशवैकालिकनिर्युक्ति के बाद ही लिखी गयी।

3. आवश्यकनिर्युक्ति के बाद दशवैकलिकनिर्युक्ति और फिर उत्तराध्ययननिर्युक्ति की रचना हुई, यह तो पूर्व चर्चा से सिद्ध हो चुका है। इन तीनों निर्युक्तियों की रचना के पश्चात् आचारांगनिर्युक्ति की रचना हुई है, क्योंकि आचारांग निर्युक्ति की गाथा 5 में कहा गया है -- 'आयारे अंगम्मि य पुव्वुद्दिट्ठा चउक्कयं निक्खेवो' -- आचार और अंग के निक्षेपों का विवेचन पहले हो चुका है।[22] दशवैकालिकनिर्युक्ति में दशवैकालिकसूत्र के क्षुल्लकाचार अध्ययन की निर्युक्ति (गाथा 79-88) में 'आचार' शब्द के अर्थ का विवेचन[22] तथा उत्तराध्ययननिर्युक्ति में उत्तराध्ययनसूत्र के तृतीय 'चतुरंग' अध्ययन की निर्युक्ति करते हुए गाथा 143-144 में 'अंग' शब्द का विवेचन किया है।[23] अतः यह सिद्ध होता है कि आवश्यक, दशवैकालिक एवं उत्तराध्ययन के पश्चात् ही आचारांगनिर्युक्ति का कम है।

इसी प्रकार आचारांग की चतुर्थ विमुक्तिचूलिका की निर्युक्ति में 'विमुक्ति' शब्द की निर्युक्ति करते हुए गाथा 331 में लिखा है कि 'मोक्ष' शब्द की निर्युक्ति के अनुसार ही 'विमुक्ति' शब्द की निर्युक्ति भी समझना चाहिए।[24] चूंकि उत्तराध्ययन के अट्ठावीसवें अध्ययन की निर्युक्ति (गाथा 497-98) में मोक्ष शब्द की निर्युक्ति की जा चुकी थी।[25] अतः इससे यही सिद्ध हुआ कि आचारांगनिर्युक्ति का क्रम उत्तराध्ययन के पश्चात् है। आवश्यकनिर्युक्ति, दशवैकालिकनिर्युक्ति, उत्तराध्ययननिर्युक्ति एवं आचारांगनिर्युक्ति के पश्चात् सूत्रकृतांगनिर्युक्ति का क्रम आता है। इस तथ्य की पुष्टि इस आधार पर भी होती है कि सूत्रकृतांगनिर्युक्ति की गाथा 99 में यह उल्लिखित है कि 'धर्म' शब्द के निक्षेपों का विवेचन पूर्व में हो चुका है (धम्मोपुव्वुद्दिट्ठो)।[26] दशवैकालिकनिर्युक्ति में दशवैकालिकसूत्र की प्रथम गाथा का विवेचन करते समय धर्म शब्द के निक्षेपों का विवेचन हुआ है।[27] इससे यह सिद्ध होता है कि सूत्रकृतांगनिर्युक्ति, दशवैकालिकनिर्युक्ति के बाद निर्मित हुई है। इसी प्रकार सूत्रकृतांगनिर्युक्ति की गाथा 127 में कहा है 'गंथोपुव्वुद्दिट्ठो'।[28] हम देखते हैं कि उत्तराध्ययननिर्युक्ति गाथा 267-268 में ग्रन्थ शब्द के निक्षेपों का भी कथन हुआ है।[29] इससे सूत्रकृतांगनिर्युक्ति भी दशवैकालिकनिर्युक्ति एवं उत्तराध्ययननिर्युक्ति से परवर्ती ही सिद्ध होती है।

4. उपर्युक्त पाँच निर्युक्तियों के यथाक्रम से निर्मित होने के पश्चात् ही तीन छेद सूत्रों यथा -- दशाश्रुतस्कंध, बृहत्कल्प एवं व्यवहार पर निर्युक्तियाँ भी उनके उल्लेख क्रम से ही लिखीं गयीं हैं, क्योंकि दशाश्रुतस्कंधनिर्युक्ति के प्रारम्भ में ही प्राचीनगोत्रीय सकल श्रुत के ज्ञाता और दशाश्रुतस्कंध, बृहत्कल्प एवं व्यवहार के रचयिता भद्रबाहु को नमस्कार किया गया है। इसमें भी इन तीनों ग्रन्थों का उल्लेख उसी क्रम से है जिस क्रम से निर्युक्ति- लेखन की प्रतिज्ञा में है।[30] अतः यह कहा जा सकता है कि इन तीनों ग्रन्थों की निर्युक्तियाँ इसी क्रम में लिखी गयी होगीं। उपर्युक्त आठ निर्युक्तियों की रचना के पश्चात् ही सूर्यप्रज्ञप्ति एवं इसिभासियाइं की निर्युक्ति की रचना होनी थी। इन दोनों ग्रन्थों पर निर्युक्तियाँ लिखी भी गयीं या नहीं, आज यह

निर्णय करना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि पूर्वोक्त प्रतिज्ञा गाथा के अतिरिक्त हमें इन निर्युक्तियों के सन्दर्भ में कहीं भी कोई भी सूचना नहीं मिलती है। अतः इन निर्युक्तियों की रचना होना संदिग्ध ही है। या तो इन निर्युक्तियों के लेखन का क्रम आने से पूर्व ही निर्युक्तिकार का स्वर्गवास हो चुका होगा या फिर इन दोनों ग्रन्थों में कुछ विवादित प्रसंगों का उल्लेख होने से निर्युक्तिकार ने इनकी रचना करने का निर्णय ही स्थगित कर दिया होगा।

अतः सम्भावना यही है कि ये दोनों निर्युक्तियाँ लिखी ही नहीं गईं, चाहे इनके नहीं लिखे जाने के कारण कुछ भी रहे हों। प्रतिज्ञागाथा के अतिरिक्त सूत्रकृतांगनिर्युक्ति गाथा 189 में ऋषिभाषित का नाम अवश्य आया है।[31] वहाँ यह कहा गया है कि जिस-जिस सिद्धान्त या मत में जिस किसी अर्थ का निश्चय करना होता है उसमें पूर्व कहा गया अर्थ ही मान्य होता है, जैसे कि-- ऋषिभाषित में। किन्तु यह उल्लेख ऋषिभाषित मूल ग्रन्थ के सम्बन्ध में ही सूचना देता है न कि उसकी निर्युक्ति के सम्बन्ध में।

निर्युक्ति के लेखक और रचना-काल :

निर्युक्तियों के लेखक कौन हैं और उनका रचना काल क्या है ये दोनों प्रश्न एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। अतः हम उन पर अलग-अलग विचार न करके एक साथ ही विचार करेंगे।

परम्परागत रूप से अन्तिम श्रुतकेवली, चतुर्दशपूर्वधर तथा छेदसूत्रों के रचयिता आर्य भद्रबाहु प्रथम को ही निर्युक्तियों का कर्त्ता माना जाता है। मुनि श्री पुण्यविजय जी ने अत्यन्त परिश्रम द्वारा श्रुत-केवली भद्रबाहु को निर्युक्तियों के कर्त्ता के रूप में स्वीकार करने वाले निम्न साक्ष्यों को संकलित करके प्रस्तुत किया है। जिन्हें हम यहाँ अविकल रूप से दे रहे हैं[32] --

1. "अनुयोगदायिनः -- सुधर्मस्वामिप्रभृतयः यावदस्य भगवतो निर्युक्तिकारस्य भद्रबाहुस्वामिनश्चतुर्दशपूर्वधरस्याचार्योऽतस्तान् सर्वानिति।।"
   - आचारांगसूत्र, शीलाङ्काचार्य कृत टीका-पत्र 4.
2. "न च केषांचिदिहोदाहरणानां निर्युक्तिकालादर्वाक्कालाभाविता इत्यन्योक्तत्वमाशङ्कनीयम्, स हि भगवाँश्चतुर्दशपूर्ववित् श्रुतकेवली कालत्रयविषयं वस्तु पश्यत्येवेति कथमन्यकृतत्वाशङ्का ? इति।" उत्तराध्ययनसूत्र शान्तिसूरिकृता पाइयटीका-पत्र 139.
3. "गुणाधिकस्य वन्दनं कर्त्तव्यम् न त्वधमस्य, यत उक्तम् --" गुणाहिए वंदणयं"। भद्रबाहुस्वामिनश्चतुर्दशपूर्वधरत्वाद् दशपूर्वधरादीनां च न्यूनत्वात् किं तेषां नमस्कारमसौ करोति ? इति। अत्रोच्यते -- गुणाधिका एव ते, अव्यवच्छित्तिगुणाधिक्यात्, अतो न दोष इति।" ओघनिर्युक्ति द्रोणाचार्यकृतश्टीका-पत्र 3.
4. "इह चरणकरणक्रियाकलापतरुमूलकल्पं सामायिकादिषडध्ययनात्मकश्रुतस्कन्धरूपमावश्यकं तावदर्थतस्तीर्थकरैः सूत्रतस्तु गणधरैर्विरचितम्। अस्य चातीव गम्भीरार्थतां सकलसाधु -- श्रावकवर्गस्य नित्योपयोगितां च विज्ञाय चतुर्दशपूर्वधरेण श्रीमद्भद्रबाहुनैतद्व्याख्यानरूपा" आभिणिबोहियनाणं0" इत्यादिप्रसिद्धग्रन्थरूपा निर्युक्तिः कृता।" विशेषावश्यक मलधारिहेमचन्द्रसूरिकृत टीका-पत्र 1.

5. "साधूनामनुग्रहाय चतुर्दशपूर्वधरेण भगवता भद्रबाहुस्वामिना कल्पसूत्रं व्यवहारसूत्रं चाकारि, उभयोरपि च सूत्रस्पर्शिकानिर्युक्तिः।" बृहत्कल्पपीठिका मलयगिरिकृत टीका-पत्र 2.
6. "इह श्रीमदावश्यकादिसिद्धान्तप्रतिबद्धनिर्युक्तिशास्त्रसंसूत्रणसूत्रधारः... श्रीभद्रबाहुस्वामी... कल्पनामधेयमध्ययनं निर्युक्तियुक्तं निर्यूढवान्।" बृहत्कल्पपीठिका श्रीक्षेमकीर्तिसूरिअनुसन्धिता टीका-पत्र 177।

इन समस्त सन्दर्भों को देखने से स्पष्ट होता है कि श्रुत-केवली चतुर्दश पूर्वधर भद्रबाहु प्रथम को निर्युक्तियों के कर्त्ता के रूप में मान्य करने वाला प्राचीनतम सन्दर्भ आर्यशीलांक का है। आर्यशीलांक का समय लगभग विक्रम संवत् की 9वीं-10वीं सदी माना जाता है। जिन अन्य आचार्यों ने निर्युक्तिकार के रूप में भद्रबाहु प्रथम को माना है, उनमें आर्यद्रोण, मलधारी हेमचन्द्र, मलयगिरि, शान्तिसूरि तथा क्षेमकीर्ति सूरि के नाम प्रमुख हैं, किन्तु ये सभी आचार्य विक्रम की दसवीं सदी के पश्चात् हुए हैं। अतः इनका कथन बहुत अधिक प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता है। उन्होंने जो कुछ भी लिखा है, वह मात्र अनुश्रुतियों के आधार पर लिखा है। दुर्भाग्य से 8-9वीं सदी के पश्चात् चतुर्दश पूर्वधर श्रुत-केवली भद्रबाहु और वाराहमिहिर के भाई नैमित्तिक भद्रबाहु के कथानक, नामसाम्य के कारण एक-दूसरे में घुल-मिल गये और दूसरे भद्रबाहु की रचनायें भी प्रथम के नाम चढ़ा दी गईं। यही कारण रहा कि नैमित्तिक भद्रबाहु को भी प्राचीनगोत्रीय श्रुत-केवली चतुर्दश पूर्वधर भद्रबाहु के साथ जोड़ दिया गया है और दोनों के जीवन की घटनाओं के इस घाल-मेल से अनेक अनुश्रुतियाँ प्रचलित हो गईं। इन्हीं अनुश्रुतियों के परिणामस्वरूप निर्युक्ति के कर्त्ता के रूप में चतुर्दश पूर्वधर भद्रबाहु की अनुश्रुति प्रचलित हो गयी। यद्यपि मुनि श्री पुण्यविजय जी ने बृहत्कल्प-सूत्र (निर्युक्ति, लघु भाष्य वृत्त्युपेतम्) के षष्ठ विभाग के आमुख में यह लिखा है कि निर्युक्तिकार स्थविर आर्य भद्रबाहु है, इस मान्यता को पुष्ट करने वाला एक प्रमाण जिनभद्र गणिक्षमाश्रमण के विशेषावश्यक भाष्य की स्वोपज्ञ टीका में भी मिलता है।[33] यद्यपि उन्होंने वहाँ उस प्रमाण का सन्दर्भ सहित उल्लेख नहीं किया है। मैं इस सन्दर्भ को खोजने का प्रयत्न कर रहा हूँ, किन्तु उसके मिल जाने पर भी हम केवल इतना ही कह सकेंगे कि विक्रम की लगभग सातवीं शती से निर्युक्तिकार प्राचीनगोत्रीय चतुर्दश पूर्वधर भद्रबाहु हैं, ऐसी अनुश्रुति प्रचलित हो गयी थी।

निर्युक्तिकार प्राचीनगोत्रीय चतुर्दश पूर्वधर भद्रबाहु है अथवा नैमित्तिक (वाराहमिहिर के भाई) भद्रबाहु हैं, यह दोनों ही प्रश्न विवादास्पद है। जैसा कि हमने संकेत किया है निर्युक्तियों को प्राचीनगोत्रीय चतुर्दश पूर्वधर आर्य भद्रबाहु की मानने की परम्परा आर्यशीलांक से या उसके पूर्व जिनभद्रमणिक्षमाश्रमण से प्रारम्भ हुई है। किन्तु उनके इन उल्लेखों में कितनी प्रामाणिकता है यह विचारणीय है, क्योंकि निर्युक्तियों में ही ऐसे अनेक प्रमाण उपस्थित हैं, जिनसे निर्युक्तिकार पूर्वधर भद्रबाहु हैं, इस मान्यता में बाधा उत्पन्न होती है। इस सम्बन्ध में मुनिश्री पुण्यविजयजी ने अत्यन्त परिश्रम द्वारा वे सब सन्दर्भ प्रस्तुत किये हैं, जो निर्युक्तिकार पूर्वधर भद्रबाहु हैं, इस मान्यता के विरोध में जाते है। हम उनकी स्थापनाओं के हार्द को ही हिन्दी भाषा में रूपान्तरित कर निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत कर रहे हैं --

1. आवश्यकनिर्युक्ति की गाथा 764 से 776 तक में वज्रस्वामी के विद्यागुरु आर्यसिंहगिरि, आर्यवज्रस्वामी, तोपलिपुत्र, आर्यरक्षित, आर्य फल्गुमित्र, स्थविर भद्रगुप्त जैसे आचार्यों का स्पष्ट उल्लेख है[34]। ये सभी आचार्य चतुर्दश पूर्वधर भद्रबाहु से परवर्ती हैं और तोषलिपुत्र को छोड़कर शेष सभी का उल्लेख कल्पसूत्र स्थविरावली में है। यदि निर्युक्तियाँ चतुर्दश पूर्वधर आर्यभद्रबाहु की कृति होती तो उनमें इन नामों के उल्लेख सम्भव नहीं थे।

2. इसीप्रकार पिण्डनिर्युक्ति की गाथा 498 में पादलिप्ताचार्य [35] का एवं गाथा 503 से 505 में वज्रस्वामी के मामा समितसूरि[36] का उल्लेख है साथ ही ब्रह्मदीपकशाखा[37] का उल्लेख भी है -- ये तथ्य यही सिद्ध करते हैं कि पिण्डनिर्युक्ति भी चतुर्दश पूर्वधर प्राचीनगोत्रीय भद्रबाहु की कृति नहीं है,क्योंकि पादलिप्तसूरि, समितसूरि तथा ब्रह्मदीपकशाखा की उत्पत्ति ये सभी प्राचीनगोत्रीय भद्रबाहु से परवर्ती हैं।

3. उत्तराध्ययननिर्युक्ति की गाथा 120 में कालकाचार्य[38] की कथा का संकत है। कालकाचार्य भी प्राचीनगोत्रीय पूर्वधर भद्रबाहु से लगभग तीनसौ वर्ष पश्चात् हुए हैं।

4. ओघनिर्युक्ति की प्रथम गाथा में चतुर्दश पूर्वधर, दश पूर्वधर एवं एकादश-अंगों के ज्ञाताओं को सामान्य रूप से नमस्कार किया गया है[39], ऐसा द्रोणाचार्य ने अपनी टीका में सूचित किया है।[40] यद्यपि मुनि श्री पुण्यविजय जी सामान्य कथन की दृष्टि से इसे असंभावित नहीं मानते हैं,क्योंकि आज भी आचार्य, उपाध्याय एवं मुनि नमस्कारमंत्र में अपने से छोटे पद और व्यक्तियों को नमस्कार करते हैं। किन्तु मेरी दृष्टि में कोई भी चतुर्दश पूर्वधर दसपूर्वधर को नमस्कार करे, यह उचित नहीं लगता। पुनः आवश्यकनिर्युक्ति की गाथा 769 में दस पूर्वधर वज्रस्वामी को नाम लेकर जो वंदन किया गया है[41], वह तो किसी भी स्थिति में उचित नहीं माना जा सकता है।

5. पुनः आवश्यकनिर्युक्ति की गाथा 763 से 774 में यह कहा गया है कि शिष्यों की स्मरण शक्ति के ह्रास को देखकर आर्य रक्षित ने, वज्रस्वामी के काल तक जो आगम अनुयोगों में विभाजित नहीं थे, उन्हें अनुयोगों में विभाजित किया।[42] यह कथन भी एक परवर्ती घटना को सूचित करता है। इससे भी यही फलित होता है कि निर्युक्तियों के कर्त्ता चतुर्दशपूर्वधर प्राचीनगोत्रीय भद्रबाहु नहीं हैं, अपितु आर्यरक्षित के पश्चात् होने वाले कोई भद्रबाहु है।

6. दशवैकालिकनिर्युक्ति[43] की गाथा 4 एवं ओघनिर्युक्ति[44] की गाथा 2 में चरणकरणानुयोग की निर्युक्ति कहूँगा ऐसा उल्लेख है। यह भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है कि निर्युक्ति की रचना अनुयोगों के विभाजन के बाद अर्थात् आर्यरक्षित के पश्चात् हुई है।

7. आवश्यकनिर्युक्ति[45] की गाथा 778-783 में तथा उत्तराध्ययन निर्युक्ति 46 की गाथा 164 से 178 तक में 7 निह्नवों और आठवें बोटिक मत की उत्पत्ति का उल्लेख हुआ है। अन्तिम सातवाँ निह्नव वीरनिर्वाण संवत् 584 में तथा बोटिक मत की उत्पत्ति वीरनिर्वाण संवत् 609 में हुई। ये घटनाएं चतुर्दशपूर्वधर प्राचीनगोत्रीय भद्रबाहु के लगभग चार सौ वर्ष

पश्चात् हुई हैं। अतः उनके द्वारा रचितनिर्युक्ति में इनका उल्लेख होना सम्भव नहीं लगता है। वैसे मेरी दृष्टि में बोटिक मत की उत्पत्ति का कथन निर्युक्तिकार का नहीं है -- निर्युक्ति में सात निह्नवों का ही उल्लेख है। निह्नवों के काल एवं स्थान सम्बन्धी गाथाएँ भाष्य गाथाएं हैं-- जो बाद में निर्युक्ति में मिल गई हैं। किन्तु निर्युक्तियों में सात निह्नवों का उल्लेख होना भी इस बात का प्रमाण है कि निर्युक्तियाँ प्राचीनगोत्रीयपूर्वधर भद्रबाहु की कृतियाँ नहीं हैं।

8. सूत्रकृतांगनिर्युक्ति की गाथा 146 में द्रव्य-निक्षेप के सम्बन्ध में एकभविक, बद्धायुष्य और 'अभिमुखित' नाम-गोत्र ऐसे तीन आदेशों का उल्लेख हुआ है।[47] ये विभिन्न मान्यताएं भद्रबाहु के काफी पश्चात् आर्य सुहस्ति, आर्य मंक्षु आदि परवर्ती आचार्यों के काल में निर्मित हुई हैं। अतः इन मान्यताओं के उल्लेख से भी निर्युक्तियों के कर्त्ता चतुर्दश पूर्वधर प्राचीनगोत्रीय भद्रबाहु हैं, यह मानने में बाधा आती है।

मुनिजी पुण्यविजयजी ने उत्तराध्ययन के टीकाकार शान्त्याचार्य, जो निर्युक्तिकार के रूप में चतुर्दश पूर्वधर भद्रबाहु को मानते हैं, की इस मान्यता का भी उल्लेख किया है कि निर्युक्तिकार त्रिकालज्ञानी है। अतः उनके द्वारा परवर्ती घटनाओं का उल्लेख होना असम्भव नहीं है।[48] यहाँ मुनि पुण्यविजयजी कहते हैं कि हम शान्त्याचार्य की इस बात स्वीकार कर भी लें, तो भी निर्युक्तियों में नामपूर्वक वज्रस्वामी को नमस्कार आदि किसी भी दृष्टि से युक्ति संगत नहीं कहा जा सकता। वे लिखते हैं यदि उपर्युक्त घटनाएँ घटित होने के पूर्व ही निर्युक्तियों में उल्लिखित कर दी गयीं हों तो भी अमुक मान्यता अमुक पुरुष द्वारा स्थापित हुई यह कैसे कहा जा सकता है।[49]

पुनः जिन दस आगम ग्रन्थों पर निर्युक्ति लिखने का उल्लेख आवश्यक निर्युक्ति में है,उससे यह स्पष्ट है कि भद्रबाहु के समय आचारांग, सूत्रकृतांग आदि अतिविस्तृत एवं परिपूर्ण थे। ऐसी स्थिति में उन आगमों पर लिखी गयी निर्युक्ति भी अतिविशाल एवं चारों अनुयोगमय होना चाहिए। इसके विरोध में यदि निर्युक्तिकार भद्रबाहु थे, ऐसी मान्यता रखने वाले विद्वान् यह कहते है कि निर्युक्तिकार तो भद्रबाहु ही थे और वे निर्युक्तियाँ भी अतिविशाल थीं, किन्तु बाद में स्थविर आर्यरक्षित ने अपने शिष्य पुष्यमित्र की विस्मृति एवं भविष्य में होने वाले शिष्यों की मंद-बुद्धि को ध्यान में रखकर जिस प्रकार आगमों के अनुयोगों को पृथक् किया, उसी प्रकार निर्युक्तियों को भी व्यवस्थित एवं संक्षिप्त किया। इसके प्रत्युत्तर में मुनि श्री पुण्यविजयजी का कथन है कि प्रथम तो यह कि आर्यरक्षित द्वारा अनुयोगों के पृथक् करने की बात तो कही जाती है,किन्तु निर्युक्तियों को व्यवस्थित करने का एक भी उल्लेख नहीं है। स्कंदिल आदि ने विभिन्न वाचनाओं में 'आगमों' को ही व्यवस्थित किया, निर्युक्तियों को नहीं।[50]

दूसरे उपलब्ध निर्युक्तियाँ उन अंग-आगमों पर नहीं हैं जो भद्रबाहु प्रथम के युग में थे। परम्परागत मान्यता के अनुसार आर्यरक्षित के युग में भी आचारांग एवं सूत्रकृतांग उतने ही विशाल थे, जितने भद्रबाहु के काल में थे। ऐसी स्थिति में चाहे एक ही अनुयोग का अनुसरण करके निर्युक्तियाँ लिखी गयी हों, उनकी विषयवस्तु तो विशाल होनी चाहिए थी। जबकि जो भी

निर्युक्तियाँ उपलब्ध हैं वे सभी माथुरीवाचना द्वारा या वलभी वाचना द्वारा निर्धारित पाठ वाले आगमों का ही अनुसरण कर रही हैं। यदि यह कहा जाय कि अनुयोगों का पृथक्करण करते समय आर्यरक्षित ने निर्युक्तियों को भी पुनः व्यवस्थित किया और उनमें अनेक गाथायें प्रक्षिप्त भी कीं, तो प्रश्न होता है कि फिर उनमें गोष्ठामाहिल और बोटिक मत की उत्पत्ति सम्बन्धी विवरण कैसे आये, क्योंकि इन दोनों की उत्पत्ति आर्यरक्षित के स्वर्गवास के पश्चात् ही हुई है।

यद्यपि इस सन्दर्भ में मेरा मुनिश्री से मतभेद है। मेरे अध्ययन की दृष्टि से सप्त निह्नवों के उल्लेख वाली गाथाएँ तो मूल गाथाएँ हैं, किन्तु उनमें बोटिक मत के उत्पत्ति स्थल रथवीरपुर एवं उत्पत्तिकाल वीर नि.सं. 609 का उल्लेख करने वाली गाथायें बाद में प्रक्षिप्त हैं। वे निर्युक्ति की गाथाएँ न होकर भाष्य की है, क्योंकि जहाँ निह्नवों एवं उनके मतों का उल्लेख है वहाँ सर्वत्र सात का ही नाम आया है। जबकि उनके उत्पत्तिस्थल एवं काल को सूचित करने वाली इन दो गाथाओं में यह संख्या आठ हो गयी।[51] आश्चर्य यह है कि आवश्यकनिर्युक्ति में बोटिकों की उत्पत्ति की कहीं कोई चर्चा नहीं है और यदि बोटिकमत के प्रस्तोता एवं उनके मन्तव्य का उल्लेख मूल आवश्यकनिर्युक्ति में नहीं है, तो फिर उनके उत्पत्ति-स्थल एवं उत्पत्ति काल का उल्लेख निर्युक्ति में कैसे हो सकता है ? वस्तुतः भाष्य की अनेक गाथायें निर्युक्तियों में मिल गई हैं। अतः ये नगर एवं काल सूचक गाथाएँ भाष्य की होनी चाहिये। यद्यपि उत्तराध्ययननिर्युक्ति के तृतीय अध्ययन की निर्युक्ति के अन्त में इन्हीं सप्त निह्नवों का उल्लेख होने के बाद अन्त में एक गाथा में शिवभूति का रथवीरपुर नगर के दीपक उद्यान में आर्यकृष्ण से विवाद होने के उल्लेख हैं।[52] किन्तु न तो इसमें विवाद के स्वरूप की चर्चा है और न कोई अन्य बात, जबकि उसके पूर्व प्रत्येक निह्नव के मन्तव्य का आवश्यकनिर्युक्ति की अपेक्षा विस्तृत विवरण दिया गया है। अतः मेरी दृष्टि में यह गाथा भी प्रक्षिप्त है। यह गाथा वैसी ही है जैसी कि आवश्यक मूलभाष्य में पायी जाती है। पुनः वहाँ यह गाथा बहुत अधिक प्रासंगिक भी नहीं कही जा सकती। मुझे स्पष्ट रूप से लगता है कि उत्तराध्ययननिर्युक्ति में भी निह्नवों की चर्चा के बाद यह गाथा प्रक्षिप्त की गयी है।

यह मानना भी उचित नहीं लगता कि चतुर्दश पूर्वधर भद्रबाहु के काल में रचित निर्युक्तियों को सर्वप्रथम आर्यरक्षित के काल में व्यवस्थित किया गया और पुनः उन्हें परवर्ती आचार्यों ने अपने युग की आगमिक वाचना के अनुसार व्यवस्थित किया। आश्चर्य तब और अधिक बढ़ जाता है कि इस सब परिवर्तन के विरुद्ध भी कोई स्वर उभरने की कहीं कोई सूचना नहीं है। वास्तविकता यह है कि आगमों में जब भी कुछ परिवर्तन करते का प्रयत्न किया गया तो उसके विरुद्ध स्वर उभरे हैं और उन्हें उल्लिखित भी किया गया।

उत्तराध्ययननिर्युक्ति में उसके 'अकाममरणीय' नामक अध्ययन की निर्युक्ति में निम्न गाथा प्राप्त होती है --

"सव्वे ए ए दारा मरणविभत्तीए वण्णिआ कमसो।
सगलणिउणे पयत्थे जिण चउदस पुव्वि भासंति" ।। 232 ।।

[ज्ञातव्य है कि मुनिपुण्यविजय जी ने इसे गाथा 233 लिखा है। किन्तु निर्युक्तिसंग्रह में इस गाथा का क्रम 232 ही है।]

इस गाथा में कहा गया है कि "मरणविभक्ति में इन सभी द्वारों का अनुक्रम से वर्णन किया गया है, पदार्थों को सम्पूर्ण रूप से तो जिन अथवा चतुर्दशपूर्वधर ही जान सकते हैं।" यदि निर्युक्तिकार चतुर्दशपूर्वधर होते तो वे इस प्रकार नहीं लिखते। शान्त्याचार्य ने स्वयं इसे दो आधारों पर व्याख्यायित किया। प्रथम चर्तुदश पूर्वधरों में आपस में अर्थज्ञान की अपेक्षा से कमी-अधिकता होती है, इसी दृष्टि से यह कहा गया हो कि पदार्थों का सम्पूर्ण स्वरूप तो चर्तुदश पूर्वी ही बता सकते हैं अथवा द्वार गाथा से लेकर आगे की ये सभी गाथाएँ भाष्य गाथाएँ हों।[53] यद्यपि मुनि पुण्यविजय जी इन्हें भाष्य गाथाएँ स्वीकार नहीं करते हैं। चाहे ये गाथाएँ भाष्य- गाथा हों या न हो किन्तु मेरी दृष्टि में शान्त्याचार्य ने निर्युक्तियों में भाष्य गाथा मिली होने की जो कल्पना की है, वह पूर्णतया असंगत नहीं है।

पुनः जैसा पूर्व में सूचित किया जा चुका है, सूत्रकृतांग के पुण्डरीक अध्ययन की निर्युक्ति में पुण्डरीक शब्द की निर्युक्ति करते समय उसके द्रव्य निक्षेप से एकभविक, बद्धायुष्य और अभिमुखित नाम-गोत्र ऐसे तीन आदेशों का निर्युक्तिकार ने स्वयं ही संग्रह किया है।[54] बृहत्कल्पसूत्रभाष्य (प्रथमविभाग, पृ. 44-45) में ये तीनों आदेश आर्यसुहस्ति, आर्य मंगु एवं आर्यसमुद्र की मान्यताओं के रूप में उल्लिखित हैं।[55] इतना तो निश्चित है कि ये तीनों आचार्य पूर्वधर प्राचीनगोत्रीय भद्रबाहु (प्रथम) से परवर्ती हैं और उनके मतों का संग्रह पूर्वधर भद्रबाहु द्वारा सम्भव नहीं है।

दशाश्रुतस्कंध की निर्युक्ति के प्रारम्भ में निम्न गाथा दी गयी है --

"वंदामिभद्दबाहुं पाईणं चरिमसयलसुयनाणिं।
सुत्तस्स कारगमिसिं दसासु कप्पे य ववहारे।।"

इसमें सकलश्रुतज्ञानी प्राचीनगोत्रीय भद्रबाहु का न केवल वंदन किया गया है, अपितु उन्हें दशाश्रुतस्कंध, कल्प एवं व्यवहार का रचयिता भी कहा है, यदि निर्युक्तियों के लेखक पूर्वधर श्रुतकेवली भद्रबाहु होते तो, वे स्वयं ही अपने को कैसे नमस्कार करते ? इस गाथा को हम प्रक्षिप्त या भाष्य गाथा भी नहीं कह सकते, क्योंकि प्रथम तो यह ग्रन्थ की प्रारम्भिक मंगल गाथा है, दूसरे चूर्णिकार ने स्वयं इसको निर्युक्तिगाथा के रूप में मान्य किया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि निर्युक्तिकार चर्तुदश पूर्वधर प्राचीनगोत्रीय भद्रबाहु नहीं हो सकते।

इस समस्त चर्चा के अन्त में मुनि जी इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि परम्परागत दृष्टि से दशाश्रुतस्कंध, कल्पसूत्र, व्यवहारसूत्र एवं निशीथ ये चार छेदसूत्र, आवश्यक आदि दस निर्युक्तियाँ, उवसग्गहर एवं भद्रबाहु संहिता ये सभी चर्तुदश पूर्वधर प्राचीनगोत्रीय भद्रबाहु स्वामी की कृति माने जाते हैं, किन्तु इनमें से 4 छेद सूत्रों के रचयिता तो चर्तुदश पूर्वधर आर्य भद्रबाहु ही हैं। शेष दस निर्युक्तियों, उवसग्गहर एवं भद्रबाहु संहिता के रचयिता अन्य कोई भद्रबाहु होने चाहिए और सम्भवतः ये अन्य कोई नहीं, अपितु वाराहसंहिता के रचयिता वाराहमिहिर के

भाई, मंत्रविद्या के पारगामी नैमित्तिक भद्रबाहु ही होना चाहिए।[55]

मुनिश्री पुण्यविजयजी ने निर्युक्तियों के कर्त्ता नैमित्तिक भद्रबाहु ही थे, यह कल्पना निम्न तर्कों के आधार पर की है[56] --

1. आवश्यकनिर्युक्ति की गाथा 1252 से 1270 तक में गंधर्व नागदत्त का कथानक आया है। इसमें नागदत्त के द्वारा सर्प के विष उतारने की क्रिया का वर्णन है।[57] उवसग्गहर (उपसर्गहर) में भी सर्प के विष उतारने की चर्चा है। अतः दोनों के कर्त्ता एक ही हैं और वे मन्त्र-तन्त्र में आस्था रखते थे।

2. पुनः नैमित्तिक भद्रबाहु ही निर्युक्तियों के कर्त्ता होने चाहिए, इसका एक आधार यह भी है कि उन्होंने अपनी प्रतिज्ञागाथा में सूर्यप्रज्ञप्ति पर निर्युक्ति लिखने की प्रतिज्ञा की थी।[58] ऐसा साहस कोई ज्योतिष का विद्वान् ही कर सकता था। इसके अतिरिक्त आचारांगनिर्युक्ति में तो स्पष्ट रूप से निमित्त विद्या का निर्देश भी हुआ है।[59] अतः मुनिश्री पुण्यविजयजी निर्युक्ति के कर्त्ता के रूप में नैमित्तिक भद्रबाहु को स्वीकार करते हैं।

यदि हम निर्युक्तिकार के रूप में नैमित्तिक भद्रबाहु को स्वीकार करते है तो हमें यह भी मानना होगा कि निर्युक्तियाँ विक्रम की छठीं सदी की रचनाएँ हैं, क्योंकि वाराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ के अन्त में शक संवत् 427 अर्थात् विक्रम संवत 566 का उल्लेख किया है।[60] नैमित्तिक भद्रबाहु बाराहमिहिर के भाई थे, अतः वे उनके समकालीन हैं। एसी स्थिति में यही मानना होगा कि निर्युक्तियों का रचनाकाल भी विक्रम की छठीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।

यदि हम उपर्युक्त आधारों पर निर्युक्तियों को विक्रम की छठीं सदी में हुए नैमित्तिक भद्रबाहु की कृति मानते हैं, तो भी हमारे सामने कुछ प्रश्न उपस्थित होते हैं --

1. सर्वप्रथम तो यह कि पाक्षिक सूत्र एवं नन्दीसूत्र में निर्युक्तियों के अस्तित्व का स्पष्ट उल्लेख है --

"स सुत्ते सअत्थे सगंथे सनिज्जुतिए ससंगहणिए"
- (पाक्षिकसूत्र, पृ.80)
"संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ संखेज्जा संगहणीओ"
- (नन्दीसूत्र, सूत्र सं.46)

इतना निश्चित है कि ये दोनों ग्रन्थ विक्रम की छठवीं सदी के पूर्व निर्मित हो चुके थे। यदि निर्युक्तियाँ छठीं सदी उत्तरार्द्ध की रचना है तो फिर विक्रम की पाँचवी शती के उत्तरार्द्ध या छठीं शती के पूर्वार्द्ध के ग्रन्थों में छठी सदी के उत्तरार्द्ध में रचित निर्युक्तियों का उल्लेख कैसे संभव है ? इस सम्बन्ध में मुनिश्री पुण्यविजय जी ने तर्क दिया है कि नन्दीसूत्र में जो निर्युक्तियों का उल्लेख है, वह गोविन्द-निर्युक्ति आदि को ध्यान में रखकर किया गया होगा।[61] यह सत्य है कि गोविन्दनिर्युक्ति एक प्राचीन रचना है क्योंकि निशीथचूर्णि में गोविन्द-निर्युक्ति के उल्लेख के साथ-साथ गोविन्दनिर्युक्ति की उत्पत्ति की कथा भी दी गई है।[62] गोविन्दनिर्युक्ति के

रचयिता वही आर्यगोविन्द होने चाहिए, जिनका उल्लेख नन्दीसूत्र में अनुयोगद्वार के ज्ञाता के रूप में किया गया है। स्थविरावली के अनुसार ये आर्य स्कंदिल की चौथी पीढ़ी में हैं।[63] अतः इनका काल विक्रम की पाँचवीं सदी निश्चित होता है। अतः मुनि श्रीपुण्यविजय जी इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पाक्षिकसूत्र एवं नन्दीसूत्र में निर्युक्ति का जो उल्लेख है वह आर्य गोविन्द की निर्युक्ति को लक्ष्य में रखकर किया गया है। इस प्रकार मुनि जी दसों निर्युक्तियों के रचयिता के रूप में नैमित्तिक भद्रबाहु को ही स्वीकार करते हैं और नन्दीसूत्र अथवा पाक्षिकसूत्र में जो निर्युक्ति का उल्लेख है उसे वे गोविन्दनिर्युक्ति का मानते हैं।

हम मुनि श्रीपुण्यविजयजी की इस बात से पूर्णतः सहमत नहीं हो सकते हैं, क्योंकि उपरोक्त दस निर्युक्तियों की रचना से पूर्व चाहे आर्यगोविन्द की निर्युक्ति अस्तित्व में हो, किन्तु नन्दीसूत्र एवं पाक्षिक सूत्र में निर्युक्ति सम्बन्धी उल्लेख हैं, वे आचारांग आदि आगम ग्रन्थों की निर्युक्ति के सम्बन्ध में हैं, जबकि गोविन्दनिर्युक्ति किसी आगम ग्रन्थ पर निर्युक्ति नहीं है। उसके सम्बन्ध में निशीथचूर्णि आदि में जो उल्लेख हैं वे सभी उसे दर्शनप्रभावक ग्रन्थ और एकेन्द्रिय में जीव की सिद्धि करने वाला ग्रन्थ बतलाते हैं।[64] अतः उनकी यह मान्यता कि नन्दीसूत्र और पाक्षिकसूत्र में निर्युक्ति के जो उल्लेख हैं, वे गोविन्दनिर्युक्ति के सन्दर्भ में हैं, समुचित नहीं है। वस्तुतः नन्दीसूत्र एवं पाक्षिकसूत्र में जो निर्युक्तियों के उल्लेख हैं वे आगम ग्रन्थों की निर्युक्तियों के हैं। अतः यह मानना होगा कि नन्दी एवं पाक्षिकसूत्र की रचना के पूर्व अर्थात् पाँचवी शती के पूर्व आगमों पर निर्युक्ति लिखी जा चुकी थी।

2. दूसरे इन दस निर्युक्तियों में और भी ऐसे तथ्य हैं जिनसे इन्हें वाराहमिहिर के भाई एवं नैमित्तिक भद्रबाहु (विक्रम संवत् 566) की रचना मानने में शंका होती है। आवश्यकनिर्युक्ति की सामायिकनिर्युक्ति में जो निह्नवों के उत्पत्ति स्थल एवं उत्पत्तिकाल सम्बन्धी गाथायें हैं एवं उत्तराध्ययननिर्युक्ति में उत्तराध्ययन के तीसरे अध्ययन की निर्युक्ति में जो शिवभूति का उल्लेख है, वे प्रक्षिप्त हैं। इसका प्रमाण यह है कि उत्तराध्ययनचूर्णि, जो कि इस निर्युक्ति पर एक प्रामाणिक रचना है, में 167 गाथा तक की ही चूर्णि दी गयी है। निह्नवों के सन्दर्भ में अन्तिम चूर्णि 'जेट्ठा सुदंसण' नामक 167वीं गाथा की है। उसके आगे निह्नवों के वक्तव्य को सामयिकनिर्युक्ति (आवश्यकनिर्युक्ति) के आधार पर जान लेना चाहिए ऐसा निर्देश है।[65] ज्ञातव्य है कि सामायिक निर्युक्ति में बोटिकों का कोई उल्लेख नहीं है। हम यह भी बता चुके हैं कि उस निर्युक्ति में जो बोटिक मत के उत्पत्तिकाल एवं स्थल का उल्लेख है, वह प्रक्षिप्त है एवं वे भाष्य गाथाएँ हैं। उत्तराध्ययनचूर्णि में एक संकेत यह भी मिलता है कि उसमें निह्नवों की कालसूचक गाथाओं को निर्युक्तिगाथाएँ न कहकर आख्यानक संग्रहणी की गाथा कहा गया है।[66] इससे मेरे उस कथन की पुष्टि होती है कि आवश्यकनिर्युक्ति में जो निह्नवों के उत्पत्तिनगर एवं उत्पत्तिकाल सूचक गाथाएँ हैं वे मूल में निर्युक्ति की गाथाएँ नहीं हैं, अपितु संग्रहणी अथवा भाष्य से उसमें प्रक्षिप्त की गयी हैं। क्योंकि इन गाथाओं में उनके उत्पत्ति नगरों एवं उत्पत्ति-समय दोनों की संख्या आठ-आठ है। इस प्रकार इनमें बोटिकों के उत्पत्तिनगर और समय का भी उल्लेख है -- आश्चर्य यह है कि ये गाथाएँ सप्त निह्नवों की चर्चा के बाद

दी गई -- जबकि बोटिकों की उत्पत्ति का उल्लेख तो इसके भी बाद में है और मात्रा एक गाथा में है। अतः ये गाथाएँ किसी भी स्थिति में निर्युक्ति की गाथायें नहीं मानी जा सकती हैं।

पुनः यदि हम बोटिक निह्नव सम्बन्धी गाथाओं को भी निर्युक्ति गाथाएँ मान भी लें तो भी निर्युक्ति के रचनाकाल की अपर सीमा को वीरनिर्वाण संवत् 610 अर्थात् विक्रम की तीसरी शती के पूर्वार्ध से आगे नहीं ले जाया जा सकता है क्योंकि इसके बाद के कोई उल्लेख हमें निर्युक्तियों में नहीं मिले। यदि निर्युक्ति नैमित्तिक भद्रबाहु (विक्रम की छठी सदी उत्तरार्द्ध) की रचनाएँ होतीं तो उनमें विक्रम की तीसरी सदी से लेकर छठी सदी के बीच के किसी न किसी आचार्य एवं घटना का उल्लेख भी, चाहे संकेत रूप में ही क्यों न हो, अवश्य होता। अन्य कुछ नहीं तो माथुरी एवं वलभी वाचना के उल्लेख तो अवश्य ही होते, क्योंकि नैमित्तिक भद्रबाहु तो उनके बाद ही हुए हैं। वलभी वाचना के आयोजक देवर्द्धिगणि के तो वे कनिष्ठ समकालिक हैं, अतः यदि वे निर्युक्ति के कर्त्ता होते तो वलभी वाचना का उल्लेख निर्युक्तियों में अवश्य करते।

3. यदि निर्युक्तियाँ नैमित्तिक भद्रबाहु (6ठवीं सदी- उत्तरार्द्ध) की कृति होतीं तो उसमें गुणस्थान की अवधारणा अवश्य ही पाई जाती। छठीं सदी के उत्तरार्द्ध में गुणस्थान की अवधारणा विकसित हो गई थी और उस काल में लिखी गई कृतियों में प्रायः गुणस्थान का उल्लेख मिलता है किन्तु जहाँ तक मुझे ज्ञात है, निर्युक्तियों में गुणस्थान सम्बन्धी अवधारणा का कहीं भी उल्लेख नहीं है। आवश्यकनिर्युक्ति की जिन दो गाथाओं में चौदह गुणस्थानों के नामों का उल्लेख मिलता है,[67] वे मूलतः निर्युक्ति गाथाएँ नहीं हैं। आवश्यक मूल पाठ में चौदह भूतग्रामों (जीव-जातियों) का ही उल्लेख है, गुणस्थानों का नहीं। अतः निर्युक्ति तो भूतग्रामों की ही लिखी गयी। भूतग्रामों के विवरण के बाद दो गाथाओं में चौदह गुणस्थानों के नाम दिये गये हैं। यद्यपि यहाँ गुणस्थान शब्द का प्रयोग नहीं है। ये दोनों गाथाएँ प्रक्षिप्त हैं, क्योंकि हरिभद्र (आठवीं सदी) ने आवश्यकनिर्युक्ति की टीका में "अधुनामुमैव गुणस्थानद्वारेण दर्शयन्नाह संग्रहणिकार" कहकर इन दोनों गाथों को संग्रहणी गाथा के रूप में उद्धृत किया है।[68] अतः गुणस्थान सिद्धान्त के स्थिर होने के पश्चात् संग्रहणी की ये गाथाएँ निर्युक्ति में डाल दी गई हैं। निर्युक्तियों में गुणस्थान की अवधारणा की अनुपस्थिति इस तथ्य का प्रमाण है कि उनकी रचना तीसरी-चौथी शती के पूर्व हुई थी। इसका तात्पर्य यह है कि निर्युक्तियां नैमित्तिक भद्रबाहु की रचना नहीं हैं।

4. साथ ही हम देखते हैं कि आचारांगनिर्युक्ति में आध्यात्मिक विकास की उन्हीं दस अवस्थाओं का विवेचन है[69] जो हमें तत्त्वार्थसूत्र में भी मिलती है[70] और जिनसे आगे चलकर गुणस्थान की अवधारणा विकसित हुई है। तत्त्वार्थसूत्र तथा आचारांगनिर्युक्ति दोनों ही विकसित गुणस्थान सिद्धान्त के सम्बन्ध में सर्वथा मौन हैं, जिससे यह फलित होता है कि निर्युक्तियों का रचनाकाल तत्त्वार्थसूत्र के सम-सामयिक (अर्थात् विक्रम की तीसरी-चौथी सदी) है। अतः वे छठीं शती के उत्तरार्ध में होने वाले नैमित्तिक भद्रबाहु की रचना तो किसी स्थिति में नहीं हो सकतीं। यदि वे उनकी कृतियाँ होती तो उनमें आध्यात्मिक विकास की इन दस अवस्थाओं के चित्रण के स्थान पर चौदह गुणस्थानों का भी चित्रण होता है।

5. निर्युक्ति गाथाओं का निर्युक्ति गाथा के रूप में मूलाचार[71] में उल्लेख तथा अस्वाध्याय काल में भी उनके अध्ययन का निर्देश यही सिद्ध करता है कि निर्युक्तियों का अस्तित्व मूलाचार की रचना और यापनीय सम्प्रदाय के अस्तित्व में आने के पूर्व का था। यह सुनिश्चित है कि यापनीय सम्प्रदाय 5वीं सदी के अन्त तक अस्तित्व में आ गया था। अतः निर्युक्तियाँ 5वीं सदी से पूर्व की रचना होनी चाहिए -- ऐसी स्थिति में भी वे नैमित्तिक भद्रबाहु (वि. 6वीं सदी उत्तरार्द्ध) की कृति नहीं मानी जा सकती है।

पुनः निर्युक्ति का उल्लेख आचार्य कुन्दकुन्द ने भी आवश्यक शब्द की निर्युक्ति करते हुए नियमसार गाथा 142 में किया है।[72] आश्चर्य यह है कि यह गाथा मूलाचार के षडावश्यक नामक अधिकार में भी यथावत् मिलती है। इसमें आवश्यक शब्द की निर्युक्ति की गई है। इससे भी यही फलित होता है कि निर्युक्तियाँ कम से कम मूलाचार और नियमसार की रचना के पूर्व अर्थात् छठी शती के पूर्व अस्तित्व में आ गई थी।

6. निर्युक्तियों के कर्त्ता नैमित्तिक भद्रबाहु नहीं हो सकते, क्योंकि आचार्य मल्लवादी (लगभग चौथी पाँचवीं शती) ने अपने ग्रन्थ नयचक्र में निर्युक्तिगाथा का उद्धरण दिया है -- निर्युक्ति लक्षणामाह -- "वत्थूणं संकमणं होति अवत्थू णये समभिरूढे"। इससे यही सिद्ध होता है कि वलभी वाचना के पूर्व निर्युक्तियों की रचना हो चुकी थी। अतः उनके रचयिता नैमित्तिक भद्रबाहु न होकर या तो काश्यपगोत्रीय आर्यभद्रगुप्त है या फिर गौतमगोत्रीय आर्यभद्र हैं।

7. पुनः वलभी वाचना के आगमों के गद्यभाग में निर्युक्तियों और संग्रहणी की अनेक गाथाएँ मिलती हैं, जैसे ज्ञाताधर्म कथा में मल्ली अध्ययन में जो तीर्थंकर-नाम-कर्म-बन्ध सम्बन्धी २० बोलों की गाथा है, वह मूलतः आवश्यकनिर्युक्ति (179-181) की गाथा है। इससे भी यही फलित होता है कि वलभी वाचना के समय निर्युक्तियों और संग्रहणी सूत्रों से अनेक गाथायें आगमों में डली गई है। अतः निर्युक्तियाँ और संग्रहणियाँ वलभी वाचना के पूर्व हैं अतः वे नैमित्तिक भद्रबाहु के स्थान पर लगभग तीसरी-चौथी शती के किसी अन्य भद्र नामक आचार्य की कृतियाँ हैं।

8. निर्युक्तियों की सत्ता वलभी वाचना के पूर्व थी, तभी तो नन्दीसूत्र में आगमों की निर्युक्तियों का उल्लेख है। पुनः अगस्त्यसिंह की दशवैकालिकचूर्णि के उपलब्ध एवं प्रकाशित हो जाने पर यह बात पुष्ट हो जाती है कि आगमिक व्याख्या के रूप में निर्युक्तियाँ वलभी वाचना के पूर्व लिखी जाने लगी थी। इस चूर्णि में प्रथम अध्ययन की दशवैकालिकनिर्युक्ति की ५४ गाथाओं की भी चूर्णि की गई है। यह चूर्णि विक्रम की तीसरी-चौथी शती में रची गई थी। इससे यह तथ्य सिद्ध हो जाता है कि निर्युक्तियाँ भी लगभग तीसरी-चौथी शती की रचना हैं।

ज्ञातव्य है कि निर्युक्तियों में भी परवर्ती काल में पर्याप्त रूप से प्रक्षेप हुआ है, क्योंकि अगस्त्यसिंहचूर्णि में दशवैकालिक के प्रथम अध्ययन की चूर्णि में मात्र ५४ निर्युक्ति गाथों की चूर्णि हुई है, जबकि वर्त्तमान में दशवैकालिकनिर्युक्ति में प्रथम अध्ययन की निर्युक्ति में १५१ गाथाएँ हैं। अतः निर्युक्तियाँ आर्यभद्रगुप्त या गौतमगोत्रीय आर्यभद्र की रचनायें हैं।

इस सम्बन्ध में एक आपत्ति यह उठाई जा सकती है कि निर्युक्तियाँ वलभी वाचना के आगमपाठों के अनुरूप क्यों है ? इसका प्रथम उत्तर तो यह है कि निर्युक्तियों का आगम पाठों से उतना सम्बन्ध नहीं है, जितना उनकी विषयवस्तु से है और यह सत्य है कि विभिन्न वाचनाओं में चाहे कुछ पाठ-भेद रहे हों किन्तु विषयवस्तु तो वही रही है और निर्युक्तियाँ मात्र विषयवस्तु का विवरण देती है। पुनः निर्युक्तियाँ मात्र प्राचीन स्तर के और बहुत कुछ अपरिवर्तित रहे आगमों पर है, सभी आगम ग्रन्थों पर नहीं है और इन प्राचीन स्तर के आगमों का स्वरूप निर्धारण तो पहले ही हो चुका था। माथुरीवाचना या वलभी वाचना में उनमें बहुत अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है। आज जो निर्युक्तियाँ हैं वे मात्र आचारांग , सूत्रकृतांग, आवश्यक, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, दशाश्रुतस्कन्ध व्यवहार, बृहत्कल्प पर है ये सभी ग्रन्थ विद्वानों की दृष्टि में प्राचीन स्तर के हैं और इनके स्वरूप में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है। अतः वलभीवाचना से समरूपता के आधार पर निर्युक्तियों को उससे परवर्ती मानना उचित नहीं है।

उपर्युक्त समग्र चर्चा से यह फलित होता है कि निर्युक्तियों के कर्त्ता न तो चर्तुदश पूर्वधर आर्य भद्रबाहु हैं और न वाराहमिहिर के भाई नैमित्तिक भद्रबाहु। यह भी सुनिश्चित है कि निर्युक्तियों की रचना छेदसूत्रों की रचना के पश्चात् हुई है। किन्तु यह भी सत्य है कि निर्युक्तियों का अस्तित्व आगमों की देवर्द्धि के समय हुई वाचना के पूर्व था। अतः यह अवधारणा भी भ्रान्त है कि निर्युक्तियाँ विक्रम की छठवीं सदी के उत्तरार्द्ध में निर्मित हुई हैं। नन्दीसूत्र एवं पाक्षिकसूत्र की रचना के पूर्व आगमिक निर्युक्तियाँ अवश्य थीं।

अब यह प्रश्न उठता है कि यदि निर्युक्तियों के कर्त्ता श्रुत-केवली पूर्वधर प्राचीनगोत्रीय भद्रबाहु तथा वाराहमिहिर के भाई नैमित्तिक भद्रबाहु दोनों ही नहीं थे, तो फिर वे कौन से भद्रबाहु हैं जिनका नाम निर्युक्ति के कर्त्ता के रूप में माना जाता है। निर्युक्ति के कर्त्ता के रूप में भद्रबाहु की अनुश्रुति जुड़ी होने से इतना तो निश्चित है कि निर्युक्तियों का सम्बन्ध किसी "भद्र" नामक व्यक्ति से होना चाहिए और उनका अस्तित्व लगभग विक्रम की तीसरी-चौथी सदी के आस-पास होना चाहिए। क्योंकि नियमसार में आवश्यक की निर्युक्ति, मूलाचार में निर्युक्तियों के अस्वाध्याय काल में भी पढ़ने का निर्देश तथा उसमें और भगवतीआराधना में निर्युक्तियों की अनेकों गाथाओं की निर्युक्ति-गाथा के उल्लेख पूर्वक उपस्थिति, यही सिद्ध करती है कि निर्युक्ति के कर्त्ता उस अविभक्त परम्परा के होने चाहिए, जिससे श्वेताम्बर एवं यापनीय सम्प्रदायों का विकास हुआ है। कल्पसूत्र स्थिविरावली में जो आचार्य परम्परा प्राप्त होती है, उसमें भगवान महावीर की परम्परा में प्राचीनगोत्रीय श्रुत-केवली भद्रबाहु के अतिरिक्त दो अन्य 'भद्र' नामक आचार्यों का उल्लेख प्राप्त होता है -- 1. आर्य शिवभूति के शिष्य काश्यपगोत्रीय आर्यभद्र और 2. आर्य कालक के शिष्य गौतमगोत्रीय आर्यभद्र।

संक्षेप में कल्पसूत्र की यह आचार्य परम्परा इस प्रकार है --

महावीर, गौतम, सुधर्मा, जम्बू, प्रभव, शय्यम्भव, यशोभद्र, संभूति विजय, भद्रबाहु

(चर्तुदशपूर्वधर), स्थूलिभद्र (ज्ञातव्य है कि भद्रबाहु एवं स्थूलिभद्र दोनों ही संभूति विजय के शिष्य थे।), आर्य सुहस्ति, सुस्थित, इन्द्रदिन्न, आर्यदिन्न, आर्यसिंहगिरि, आर्यवज्र, आर्य वज्रसेन, आर्यरथ, आर्य पुष्यगिरि, आर्य फल्गुमित्र, आर्य धनगिरि, आर्यशिवभूति, आर्यभद्र (काश्यपगोत्रीय), आर्यकृष्ण, आर्यनक्षत्र, आर्यरक्षित, आर्यनाग, आर्य ज्येष्ठिल, आर्यविष्णु, आर्यकालक, आर्यसंपालित, आर्यभद्र (गौतमगोत्रीय) आर्यवृद्ध, आर्य संघपालित, आर्यहस्ती, आर्यधर्म, आर्यसिंह, आर्यधर्म, षांडिल्य (सम्भवतः स्कंदिल, जो माथुरी वाचना के वाचना प्रमुख थे) आदि। गाथाबद्ध जो स्थविरावली है उसमें इसके बाद जम्बु, नन्दिल, दुष्यगणि, स्थिरगुप्त, कुमारधर्म एवं देवर्द्धिक्षपकश्रमण के पाँच नाम और आते हैं।[73]

ज्ञातव्य है कि नैमित्तिक भद्रबाहु का नाम जो विक्रम की छठीं शती के उत्तरार्ध में हुए हैं, इस सूची में सम्मिलित नहीं हो सकता है। क्योंकि यह सूची वीर निर्वाण सं. 980 अर्थात् विक्रम सं. 510 में अपना अन्तिम रूप ले चुकी थी।

इस स्थविरावली के आधार पर हमें जैन परम्परा में विक्रम की छठीं शती के पूर्वार्ध तक होने वाले भद्र नामक तीन आचार्य के नाम मिलते हैं -- प्रथम प्राचीनगोत्रीय आर्य भद्रबाहु, दूसरे आर्य शिवभूति के शिष्य काश्यपगोत्रीय आर्य भद्रगुप्त, तीसरे आर्य विष्णु के प्रशिष्य और आर्यकालक के शिष्य गौतमगोत्रीय आर्यभद्र। इनमें वराहमिहर के भ्राता नैमित्तिक भद्रबाहु को जोड़ने पर यह संख्या चार हो जाती है। इनमें से प्रथम एवं अन्तिम को तो निर्युक्तिकर्त्ता के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है, इस निष्कर्ष पर हम पहुँच चुके हैं। अब शेष दो रहते हैं-- 1. शिवभूति के शिष्य आर्यभद्रगुप्त और दूसरे आर्यकालक के शिष्य आर्यभद्र। इनमें पहले हम आर्य धनगिरि के प्रशिष्य एवं आर्य शिवभूति के शिष्य आर्यभद्रगुप्त के सम्बन्ध में विचार करेगें कि क्या वे निर्युक्तियों के कर्त्ता हो सकते हैं ?

क्या आर्यभद्रगुप्त निर्युक्तियों के कर्त्ता हैं ?

निर्युक्तियों को शिवभूति के शिष्य काश्यपगोत्रीय भद्रगुप्त की रचना मानने के पक्ष में हम निम्न तर्क दे सकते हैं --

1. निर्युक्तियाँ उत्तर भारत के निर्ग्रन्थ संघ से विकसित श्वेताम्बर एवं यापनीय दोनों सम्प्रदायों में मान्य रही हैं, क्योंकि यापनीय ग्रन्थ मूलाचार में न केवल शताधिक निर्युक्ति गाथाएँ उद्धृत हैं, अपितु उसमें अस्वाध्याय काल में निर्युक्तियों के अध्ययन करने का निर्देश भी है। इससे फलित होता है कि निर्युक्तियों की रचना मूलाचार से पूर्व हो चुकी थी।[74] यदि मूलाचार को छठीं सदी की रचना भी मानें तो उसके पूर्व निर्युक्तियों का अस्तित्व तो मानना ही होगा, साथ ही यह भी मानना होगा कि निर्युक्तियाँ मूलरूप में अविभक्त धारा में निर्मित हुई थीं। चूँकि परम्परा भेद तो शिवभूति के पश्चात् उनके शिष्यों कौडिन्य और कोट्टवीर से हुआ है। अतः निर्युक्तियाँ शिवभूति के शिष्य भद्रगुप्त की रचना मानी जा सकती हैं, क्योंकि वे न केवल अविभक्त धारा में हुए, अपितु लगभग उसीकाल में अर्थात् विक्रम की तीसरी शती में हुए हैं, जो कि निर्युक्ति का रचना काल है।

2. पुनः आचार्य भद्रगुप्त को उत्तर-भारत की अचेल परम्परा का पूर्वपुरुष दो-तीन आधारों पर माना जा सकता है। प्रथम तो कल्पसूत्र की पट्टावली के अनुसार आर्यभद्रगुप्त आर्यशिवभूति के शिष्य हैं और ये शिवभूति वही हैं जिनका आर्यकृष्ण से मुनि की उपधि (वस्त्र-पात्र) के प्रश्न पर विवाद हुआ था और जिन्होंने अचेलता का पक्ष लिया था। कल्पसूत्र स्थविरावली में आर्य कृष्ण और आर्यभद्र दोनों को आर्य शिवभूति का शिष्य कहा है। चूँकि आर्यभद्र ही ऐसे व्यक्ति हैं -- जिन्हें आर्यवज्र एवं आर्यरक्षित के शिक्षक के रूप में श्वेताम्बरों में और शिवभूति के शिष्य के रूप में यापनीय परम्परा में मान्यता मिली है। पुनः आर्यशिवभूति के शिष्य होने के कारण आर्यभद्र भी अचेलता के पक्षधर होगें और इसलिए उनकी कृतियाँ यापनीय परम्परा में मान्य रही होंगी।

3. विदिशा से जो एक अभिलेख प्राप्त हुआ है उसमें भद्रान्वय एवं आर्यकुल का उल्लेख है --

शमदमवान चीकरत् [।।] आचार्य - भद्रान्वयभूषणस्य
शिष्यो ह्यसावार्य्यकुलोदगतस्य [।] आचार्य - गोश
(जै.शि.सं.२ पृ. 57)

सम्भावना यही है कि भद्रान्वय एवं आर्यकुल का विकास इन्हीं आर्य भद्र से हुआ हो। यहाँ के अन्य अभिलेखों में मुनि का 'पाणितलभोजी' ऐसा विशेषण होने से यह माना जा सकता है यह केन्द्र अचेल धारा का था। अपने पूर्वज आचार्य भद्र की कृतियाँ होने के कारण निर्युक्तियाँ यापनीयों में भी मान्य रही होगीं। ओघनिर्युक्ति या पिण्डनिर्युक्ति में भी जो कि परवर्ती एवं विकसित हैं, दो चार प्रसंगों के अतिरिक्त कहीं भी वस्त्र-पात्र का विशेष उल्लेख नहीं मिलता है। यह इस तथ्य का भी सूचक है कि निर्युक्तियों के काल तक वस्त्र-पात्र आदि का समर्थन उस रूप में नहीं किया जाता था, जिस रूप में परवर्ती श्वेताम्बर सम्प्रदाय में हुआ। वस्त्र-पात्र के सम्बन्ध में निर्युक्ति की मान्यता भगवतीआराधना एवं मूलाचार से अधिक दूर नहीं है। आचारांगनिर्युक्ति में आचारांग के वस्त्रैषणा अध्ययन की निर्युक्ति केवल एक गाथा में समाप्त हो गयी है और पात्रैषणा पर कोई निर्युक्ति गाथा ही नहीं है। अतः वस्त्र-पात्र के सम्बन्ध में निर्युक्तियों के कर्त्ता आर्य भद्र की स्थिति भी मथुरा के साधु-साध्वियों के अंकन से अधिक भिन्न नहीं है। अतः निर्युक्तिकार के रूप में आर्य भद्रगुप्त को स्वीकार करने में निर्युक्तियों में वस्त्र-पात्र के उल्लेख अधिक बाधक नहीं हैं।

4. चूँकि आर्यभद्र के निर्यापक आर्यरक्षित माने जाते हैं। निर्युक्ति और चूर्णि दोनों से ही यह सिद्ध है आर्यरक्षित भी अचेलता के ही पक्षधर थे और उन्होंने अपने पिता को, जो प्रारम्भ में अचेल दीक्षा ग्रहण करना नहीं चाहते थे, योजनापूर्वक अचेल बना ही दिया था। चूर्णि में जो कटीपट्टक की बात है, वह तो श्वेताम्बर पक्ष की पुष्टि हेतु डाली गयी प्रतीत होती है।

भद्रगुप्त को निर्युक्ति का कर्त्ता मानने के सम्बन्ध में निम्न कठिनाइयाँ हैं :-

1. आवश्यकनिर्युक्ति एवं आवश्यकचूर्णि के उल्लेखों के अनुसार आर्यरक्षित भद्रगुप्त के निर्यापक (समाधिमरण कराने वाले) माने गये। आवश्यकनिर्युक्ति न केवल आर्यरक्षित की विस्तार से चर्चा करती है, अपितु उनका आदरपूर्वक स्मरण भी करती है। भद्रगुप्त आर्यरक्षित से दीक्षा में ज्येष्ठ है, ऐसी स्थिति में उनके द्वारा रचित निर्युक्तियों में आर्यरक्षित का उल्लेख इतने विस्तार से एवं इतने आदरपूर्वक नहीं आना चाहिए। यद्यपि परवर्ती उल्लेख एकमत से यह मानते हैं कि आर्यभद्रगुप्त की निर्यापना आर्यरक्षित ने करवायी, किन्तु मूल गाथा को देखने पर इस मान्यता के बारे में किसी को सन्देह भी हो सकता है, मूल गाथा निम्नानुसार है --

"निज्जवण भद्दगुत्ते वीसुं पढणं च तस्स पुव्वगयं।
पव्वाविओ य भाया रक्खिअखमणेहिं जणओ अ"।।

- आवश्यकनिर्युक्ति, 776

यहाँ "निज्जवण भद्दगुत्ते" में यदि "भद्दगुत्ते" को आर्ष प्रयोग मानकर कोई प्रथमाविभक्ति में समझे तो इस गाथा के प्रथम दो चरणों का अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है-- भद्रगुप्त ने आर्यरक्षित की निर्यापना की और उनसे समस्त पूर्वगत साहित्य का अध्ययन किया।

गाथा के उपरोक्त अर्थ को स्वीकार करने पर तो यह माना जा सकता है कि निर्युक्तियों में आर्यरक्षित का जो बहुमान पूर्वक उल्लेख है, वह अप्रासंगिक नहीं है। क्योंकि जिस व्यक्ति ने आर्यरक्षित की निर्यापना करवायी हो और जिनसे पूर्वों का अध्ययन किया वह उनका अपनी कृति में सम्मानपूर्वक उल्लेख करेगा ही। किन्तु गाथा का इस दृष्टि से किया गया अर्थ चूर्णि में प्रस्तुत कथानकों के साथ एवं निर्युक्ति गाथाओं के पूर्वापर प्रसंग को देखते हुए किसी भी प्रकार संगत नहीं माना जा सकता है। चूर्णि में तो यही कहा गया है कि आर्यरक्षित ने भद्रगुप्त की निर्यापना करवायी और आर्यवज्र से पूर्वसाहित्य का अध्ययन किया। यहाँ दूसरे चरण में प्रयुक्त "तस्स" शब्द का सम्बन्ध आर्य वज्र से है, जिनका उल्लेख पूर्व गाथाओं में किया गया है। साथ ही यहाँ 'भद्दगुत्ते' में सप्तमी का प्रयोग है, जो एक कार्य को समाप्त कर दूसरा कार्य प्रारम्भ करने की स्थिति में किया जाता है। यहाँ सम्पूर्ण गाथा का अर्थ इस प्रकार होगा -- आर्यरक्षित ने भद्रगुप्त की निर्यापना (समाधिमरण) करवाने के पश्चात् (आर्यवज्र से) पूर्वों का समस्त अध्ययन किया है और अपने भाई और पिता को दीक्षित किया। यदि आर्यरक्षित भद्रगुप्त के निर्यापक हैं और वे ही निर्युक्तियों के कर्त्ता भी हैं, तो फिर निर्युक्तियों में आर्यरक्षित द्वारा उनका निर्यापन (समाधिमरण) करवाने के बाद किये गये कार्यों का उल्लेख नहीं होना था। किन्तु ऐसा उल्लेख है, अतः निर्युक्तियाँ काश्यपगोत्रीय भद्रगुप्त की कृति नहीं हो सकती हैं।

2. दूसरी एक कठिनाई यह भी है कि कल्पसूत्र स्थविरावली के अनुसार आर्यरक्षित आर्यवज्र से 8वीं पीढ़ी में आते हैं। अतः यह कैसे सम्भव हो सकता है कि 8वीं पीढ़ी में होने वाला व्यक्ति अपने से आठ पीढ़ी पूर्व के आर्यवज्र से पूर्वों का अध्ययन करे। इससे कल्पसूत्र स्थविरावली में दिये गये क्रम में संदेह होता है, हालाँकि कल्पसूत्र स्थविरावली एवं अन्य स्रोतों से इतना तो निश्चित होता है कि आर्यभद्र आर्यरक्षित से पूर्व में हुए हैं। उसके अनुसार

आर्यरक्षित आर्यभद्र गुप्त के प्रशिष्य सिद्ध होते हैं। यद्यपि कथानकों में आर्यरक्षित को तोषलिपुत्र का शिष्य कहा गया है। हो सकता है कि तोषलिपुत्र आर्यभद्र गुप्त के शिष्य रहे हों। स्थविरावली के अनुसार आर्यभद्र के शिष्य आर्यनक्षत्र और उनके शिष्य आर्यरक्षित थे। चाहे कल्पसूत्र की स्थविरावली में कुछ अस्पष्टताएँ हों और दो आचार्यों की परम्परा को कहीं एक साथ मिला दिया गया हो, फिर भी इतना तो निश्चित है कि आर्य भद्र आर्यरक्षित से पूर्ववर्ती या ज्येष्ठ समकालिक हैं। ऐसी स्थिति में यदि निर्युक्तियाँ आर्यभद्रगुप्त के समाधिमरण के पश्चात् की आर्यरक्षित के जीवन की घटनाओं का विवरण देती हैं, तो उन्हें शिवभूति के शिष्य काश्यपगोत्रीय आर्यभद्रगुप्त की कृति नहीं माना जा सकता।

यदि हम आर्यभद्र को ही निर्युक्ति के कर्त्ता के रूप में स्वीकार करना चाहते हैं तो इसके अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है कि हम आर्यरक्षित, अन्तिम निह्नव एवं बोटिकों का उल्लेख करने वाली निर्युक्ति गाथाओं को प्रक्षिप्त मानें। यदि आर्यरक्षित आर्यभद्रगुप्त के निर्यापक हैं तो ऐसी स्थिति में आर्यभद्र का स्वर्गवास वीर निर्वाण सं. 560 के आस-पास मानना होगा क्योंकि प्रथम तो आर्यरक्षित ने भद्रगुप्त की निर्यापना अपने युवावस्था में ही करवायी थी और दूसरे तब वीर निर्वाण सं. 584 (विक्रम की द्वितीय शताब्दि) में स्वर्गवासी होने वाले आर्यवज्र जीवित थे। अतः निर्युक्तियों में अन्तिम निह्नव का कथन भी सम्भव नहीं लगता, क्योंकि अबद्धिक नामक सातवाँ निह्नव वीरनिर्वाण के 584 वर्ष पश्चात् हुआ है। अतः हमें न केवल आर्यरक्षित सम्बन्धी अपितु अन्तिम निह्नव एवं बोटिकों सम्बन्धी विवरण भी निर्युक्तियों में प्रक्षिप्त मानना होगा। यदि हम यह स्वीकार करने को सहमत नहीं हैं, तो हमें यह स्वीकार करना होगा कि काश्यपगोत्रीय आर्यभद्रगुप्त भी निर्युक्तियों के कर्त्ता नहीं हो सकते हैं। अतः हमें अन्य किसी भद्र नामक आचार्य की खोज करना होगा।

क्या गौतमगोत्रीय आर्यभद्र निर्युक्तियों के कर्त्ता हैं ?

काश्यपगोत्रीय भद्रगुप्त के पश्चात् कल्पसूत्र पट्टावली में हमें गौतमगोत्रीय आर्यकालक के शिष्य और आर्य संपलित के गुरु भाई आर्य भद्र का भी उल्लेख मिलता है।[75] ये आर्यभद्र आर्य विष्णु के प्रशिष्य एवं आर्यकालक के शिष्य हैं तथा इनके शिष्य के रूप में आर्य वृद्ध का उल्लेख है। यदि हम आर्य वृद्ध को वृद्धवादी मानते हैं, तो ऐसी स्थिति में ये आर्यभद्र सिद्धसेन के दादा गुरु सिद्ध होते हैं। यहाँ हमें यह देखना होगा कि क्या ये आर्यभद्र भी स्पष्ट संघभेद अर्थात् श्वेताम्बर, यापनीय और दिगम्बर सम्प्रदायों के नामकरण के पूर्व हुए हैं ? यह सुनिश्चित है कि सम्प्रदाय भेद के पश्चात् का कोई भी आचार्य निर्युक्ति का कर्त्ता नहीं हो सकता, क्योंकि निर्युक्तियाँ यापनीय और श्वेताम्बर दोनों में मान्य हैं। यदि वे एक सम्प्रदाय की कृति होतीं तो दूसरा सम्प्रदाय उसे मान्य नहीं करता। यदि हम आर्य विष्णु को दिगम्बर पट्टावली में उल्लिखित आर्य विष्णु समझें तो इनकी निकटता अचेल परम्परा से देखी जा सकती है। दूसरे विदिशा के अभिलेख में जिस भद्रान्वय एवं आर्य कुल का उल्लेख है उसका सम्बन्ध इन गौतमगोत्रीय आर्यभद्र से भी माना जा सकता है क्योंकि इनका काल भी स्पष्ट सम्प्रदाय भेद एवं उस अभिलेख के पूर्व है। दुर्भाग्य से इनके सन्दर्भ में आगमिक व्याख्या साहित्य में कहीं कोई

विवरण नहीं मिलता, केवल नाम-साम्य के आधार पर हम इनके निर्युक्तिकार होने की सम्भावना व्यक्त कर सकते हैं।

इनकी विद्वता एवं योग्यता के सम्बन्ध में भी आगमिक उल्लेखों का अभाव है, किन्तु वृद्धवादी जैसे शिष्य और सिद्धसेन जैसे प्रशिष्य के गुरु विद्वान होंगे, इसमें शंका नहीं की जा सकती। साथ ही इनके प्रशिष्य सिद्धसेन का आदरपूर्वक उल्लेख दिगम्बर और यापनीय आचार्य भी करते हैं, अतः इनकी कृतियों को उत्तर-भारत की अचेल परम्परा में मान्यता मिली हो ऐसा माना जा सकता है। ये आर्यरक्षित से पाँचवीं पीढ़ी में माने गये हैं। अतः इनका काल इनके सौ-डेढ़ सौ वर्ष पश्चात् ही होगा अर्थात् ये भी विक्रम की तीसरी सदी के उत्तरार्द्ध या चौथी के पूर्वार्द्ध में कभी हुए होंगें। लगभग यही काल माथुरीवाचना का भी है। चूंकि माथुरीवाचना यापनीयों को भी स्वीकृत रही है, इसलिए इन कालक के शिष्य गौतमगोत्रीय आर्यभद्र को निर्युक्तियों का कर्त्ता मानने में काल एवं परम्परा की दृष्टि से कठिनाई नहीं है।

यापनीय और श्वेताम्बर दोनों में निर्युक्तियों की मान्यता के होने के प्रश्न पर, भी इससे कोई बाधा नहीं आती, क्योंकि ये आर्यभद्र आर्य नक्षत्र एवं आर्य विष्णु की ही परम्परा शिष्य हैं। सम्भव है कि दिगम्बर परम्परा में आर्यनक्षत्र और आर्य विष्णु की परम्परा में हुए जिन भद्रबाहु के दक्षिण में जाने के उल्लेख मिलते हैं, जिनसे अचेल धारा में भद्रान्वय और आर्यकुल का आविर्भाव हुआ हो वे ये ही आर्यभद्र हों। यदि हम इन्हें निर्युक्तियों का कर्त्ता मानते है, तो इससे नन्दीसूत्र एवं पाक्षिक सूत्र में जो निर्युक्तियों के उल्लेख हैं वे भी युक्तिसंगत बन जाते हैं।

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि निर्युक्तियों के कर्त्ता आर्य नक्षत्र की परम्परा में हुए आर्य विष्णु के प्रशिष्य एवं आर्य संपलित के गुरु-भ्राता गौतमगोत्रीय आर्यभद्र ही हैं। यद्यपि मैं अपने इस निष्कर्ष को अन्तिम तो नहीं कहता, किन्तु इतना अवश्य कहूँगा कि इन आर्यभद्र को निर्युक्ति का कर्त्ता स्वीकार करने पर हम उन अनेक विप्रतिपत्तियों से बच सकते हैं, जो प्राचीनगोत्रीय पूर्वधर भद्रबाहु, काश्यपगोत्रीय आर्यभद्रगुप्त और वाराहमिहिर के भ्राता नैमित्तिक भद्रबाहु को निर्युक्तियों का कर्त्ता मानने पर आती हैं। हमारा यह दुर्भाग्य है कि अचेलधारा में निर्युक्तियाँ संरक्षित नहीं रह सकीं, मात्र भगवती-आराधना, मूलाचार और कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में उनकी कुछ गाथायें ही अवशिष्ट हैं। इनमें भी मूलाचार ही मात्र ऐसा ग्रन्थ है जो लगभग सौ निर्युक्ति गाथाओं का निर्युक्ति गाथा के रूप में उल्लेख करता है। दूसरी ओर सचेल धारा में जो निर्युक्तियाँ उपलब्ध हैं, उनमें अनेक भाष्यगाथायें मिश्रित हो गई हैं, अतः उपलब्ध निर्युक्तियों में से भाष्य गाथाओं एवं प्रक्षिप्त गाथाओं को अलग करना एक कठिन कार्य है, किन्तु यदि एक बार निर्युक्तियों के रचनाकाल, उसके कर्त्ता तथा उनकी परम्परा का निर्धारण हो जाये, तो यह कार्य सरल हो सकता है।

आशा है जैन विद्या के निष्पक्ष विद्वानों की अगली पीढ़ी इस दिशा में और भी अन्वेषण कर निर्युक्ति साहित्य सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करेगी। प्रस्तुत लेखन में मुनि श्री पुण्यविजयजी का आलेख मेरा उपजीव्य रहा है। आचार्य हस्तीमल जी ने जैनधर्म के

मौलिक इतिहास के लेखन में भी उसी का अनुसरण किया है। किन्तु मैं उक्त दोनों के निष्कर्षों से सहमत नहीं हो सका। यापनीय सम्प्रदाय पर मेरे द्वारा ग्रन्थ लेखन के समय मेरी दृष्टि में कुछ नई समस्यायें और समाधान दृष्टिगत हुए और उन्हीं के प्रकाश में मैने कुछ नवीन स्थापनायें प्रस्तुत की हैं, वे सत्य के कितनी निकट हैं, यह विचार करना विद्वानों का कार्य है। मैं अपने निष्कर्षों को अन्तिम सत्य नहीं मानता हूँ अतः सदैव उनके विचारों एवं समीक्षाओं से लाभान्वित होने का प्रयास करूँगा।

सन्दर्भ

1 (अ) निज्जुत्ता ते अत्था, जं बद्धा तेण होइ णिज्जुत्ती।
- आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा 88

(ब) सूत्रार्थयो परस्पर निर्योजनं सम्बन्धनंनिर्युक्तिः
- आवश्यकनिर्युक्ति टीका हरिभद्र, गाथा 83 की टीका

2. अत्थाणं उग्गहणं अवग्गहं तह विआलणं इहं।
- आवश्यकनिर्युक्ति, 3

3. ईहा अपोह वीमंसा, मग्गणा य गवेसणा।
सण्णा सई मई पण्णा सव्वं आभिनिबोहियं।।
- आवश्यकनिर्युक्ति, 12

4. आवस्सगस्स दसकालिअस्स तह उत्तरज्झमायारे।
सूयगडे निज्जुत्तिं वुच्छामि तहा दसाणं च।।
कप्पस्स य निज्जुतिं ववहारस्सेव परमणि णस्स।
सुरिअपण्णत्तीए वुच्छं इसिभासियाणं च।।
- आवश्यकनिर्युक्ति, 84, 85।

5. इसिभासियाइं (प्राकृत भारती, जयपुर), भूमिका, सागरमल जैन, पृ. 93

6. बृहत्कथाकोश (सिंघी जैन ग्रन्थमाला) प्रस्तावना ए.एन.उपाध्ये, पृ.31

7. आराधना ... तस्या निर्युक्तिराधनानिर्युक्तिः। - मूलाचार, पंचाचाराधिकार, गा. 279 की टीका (भारतीय ज्ञानपीठ 1984)

8. गोविंदाणं पि नमो अणुओगे विउलधारणिंदाणं।
- नन्दिसूत्र स्थविरावली, गा. 41

9. व्यवहारभाष्य, भाग 6, गा. 267-268

10. सो य हेउगोवएसो गोविन्दनिज्जुत्तिमादितो...।
दरिसणप्पभावगाणि सत्थाणि जहा गोविंदनिज्जुत्तिमादी।
- आवश्यकचूर्णि भाग1, पृ.31, 353, भाग 2, पृ. 201, 322

11. गोविंदो... पच्छातेण एगिंदिय जीव साहणं गोविंद निज्जुतिकया।
निशीथ भाष्य गाथा 3656, निशीथचूर्णि, भाग 3, पृ. 260, भाग 4, पृ. 96

12. नन्दीसूत्र, (सं. मधुकरमुनि) सूत्रसंख्या,

13 (अ) प्राकृतसाहित्य का इतिहास, डॉ. जगदीश चन्द्रजैन, पृ.
(ब) जैनसाहित्य का बृहद् इतिहास, भाग 3, डॉ. मोहनलाल मेहता, पृ. 6

14. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा 84,85

15. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा 84

16. बहुरय पएस अव्वत्तसमुच्छादुगतिग अबद्धिया चेव।
सत्तेए णिण्हगा खलु तित्थंमि उ वद्धमाणस्स।।
बहुरय जमालिपभवा जीवपएसा ये तीसगुत्ताओ।
अव्वत्ताऽऽसाढाओ सामुच्छेयाऽऽसमित्ताओ।।
गंगाओ दोकिरिया छलुगा तरासियाण उप्पत्ती।
थेराय गोट्ठमाहिल पुट्ठमबद्धं परूविंति।।
सावत्थी उसभपुरं सेयविया मिहिल उल्लुगातीरं।
पुरिमंतरंजि दसपुर रहवीरपुरं च नगराइं।।
चोद्दस सोलस वासा चोद्दसवीसुत्तरा य दोण्णि सया।
अट्ठावीसा य दुवे पंचेव सया उ चोयाला।।
पंच सया चुलसीया छच्चेव सया णवोत्तरा होंति।
णाणुपत्तीय दुवे उप्पण्णा णिव्वुए सेसा।।
एवं एए कहिया ओसप्पिणीए उ निण्हवा सत्त।
वीरवरस्स पवयणे सेसाणं पव्वयणे णत्थि।।

17. बहुरय जमालिपभवा जीवपएसा य तीसगुत्ताओ।
अव्वत्ताऽऽसाढाओ सामुच्छेयाऽऽसमित्ताओ।।
गंगाए दोकिरिया छलुगा तेरासिआण उप्पत्ती।
थेरा य गुट्ठमाहिल पुट्ठबद्धं परूविंति।।
जिट्ठा सुदंसण जमालि अणुज्ज सावत्थि तिंदुगुज्जाणे।
पंच सया य सहस्सं ढंकेण जमालि मुत्तूणं।।
रायगिहे गुणसिलए वसु चउदसपुव्वि तीसगुत्ताओ।
आमलकप्पा नयरि मित्तसिरी कूरपिंडादि।।
सियवियपोलासाढे जोगे तद्दिवसहिययसूले य।
सोहम्मि नलिणगुम्मे रायगिहे पुरिय बलभद्दे।।
मिहिलाए लच्छिघरे महगिरि कोडिन्न आसमित्तो अ।
णेउणमणुप्पवाए रायगिहे खंडरक्खा य।।
नइखेडजणव उल्लग महगिरि धणगुत्त अज्जगंगे य।
किरिया दो रायगिहे महातवो तीरमणिनाए।।
पुरिमंतरंजि भुयगुह बलसिरि सिरिगुत्त रोहगुत्ते य।
परिवाय पुट्टसाले घोसण पडिसेहणा वाए।।
विच्छुय सप्पे मूसग मिगी वराही य कागि पोयाइं।
एयाहिं विज्जाहिं सो उ परिव्वायगो कुसलो।।
मोरिय नउलि बिराली वग्घी सीही य उलुगि ओवाइ।
एयाओ विज्जाओ गिण्ह परिव्वायमहणीओ।।

दसपुरनगरुच्छुघरे अज्जरक्खिय पुसमित्तत्तियगं च।
गुट्ठामाहिल नव अट्ठ सेसपुच्छा य विंझस्स।।
पुट्ठो जहा अबद्धो कंचुइणं कंचुओ समन्नेइ।
एवं पुट्ठमबद्धं जीवं कम्मं समन्नेइ।।
पच्चक्खाणं सेयं अपरिमाणेण होइ कायव्वं।
जेसिं तु परीमाणं तं दुट्ठं होइ आसंसा।
रहवीरपुरं नयरं दीवगमुज्जाण अज्जकण्हे अ।
सिवभूइस्सुवहिंमि पुच्छा थेराण कहणा य।।
- उत्तराध्ययननिर्युक्ति, 165-178

18. उत्तराध्ययननिर्युक्ति, गाथा 29
19. दशवैकालिकनिर्युक्ति, गाथा 309-326
20. उत्तराध्ययननिर्युक्ति, गाथा 207
21. दशवैकालिकनिर्युक्ति, गाथा 161-163
22. आचारांगनिर्युक्ति, गाथा, 5
23. (अ) दशवैकालिकनिर्युक्ति, गाथा, 79-88
(ब) उत्तराध्ययननिर्युक्ति, गाथा 143-144
24. जो चेव होइ मुक्खो सा उ विमुत्ति पगयं तु भावेणं।
देसविमुक्का साहू सव्वविमुक्का भवे सिद्धा।।
- आचारांगनिर्युक्ति, 331
25. उत्तराध्ययननिर्युक्ति, गाथा 497-92
26. सूत्रकृतांगनिर्युक्ति, गाथा 99
27. दशवैकालिकनिर्युक्ति, गाथा 3
28. सूत्रकृतांगनिर्युक्ति, गाथा 127
29. उत्तराध्ययननिर्युक्ति, गाथा, 267-268
30. दशाश्रुतस्कंधनिर्युक्ति, गाथा 1
31. तहवि य कोई अत्थो उप्पज्जति तम्मि तंमि समयंमि।
पुव्वभणिओ अणुमतो अ होइ इसिभासिएसु जहा।।
- सूत्रकृतांगनिर्युक्ति, गाथा, 189
32. (क) बृहत्कल्पसूत्रम, षष्ठ विभाग, प्रकाशक-- श्री आत्मानन्द जैन सभा भावनगर, प्रस्तावना, पृ. 4,5
33. वही, आमुख, पृ.2
34. (क) मूढणइयं सुयं कालियं तु ण णया समोयरंति इहं।
अपुहुत्ते समोयारो, नत्थि पुहुत्ते समोयारो।।
जावंति अज्जवइरा, अपुहुत्तं कालियाणुओगे य।
तेणाऽऽरेण पुहुत्तं, कालियसुय दिट्ठिवाए य।।

– आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा 762-776

(ख) तुंबवणसन्निवेसाओ, निग्गयं पिउसगासमल्लीणं।
छम्मासियं छसु जयं, माऊय समन्नियं वंदे।।
जो गुज्झएहिं बालो, निमंतिओ भोयणेण वासंते।
णेच्छइ विणीयविणओ, तं वइररिसिं णमंसामि।।
उज्जेणीए जो जंभगेहिं आणक्खिऊण थुयमहिओ।\
अक्खीणमहाणसियं सीहगिरिपसंसियं वंदे।।
जस्स अणुण्णाए वायगत्तणे दसपुरम्मि णयरम्मि।
देवेहिं कया महिमा, पयाणुसारिं णमंसामि।।
जो कन्नाइ धणेण य, णिमंतिओ जुव्वणम्मि गिहवइणा।
नयरम्मि कुसुमनामे, तं बइररिसिं णमंसामि।।
जणुद्धारआ विज्जा, आगासगमा महारिण्णाओ।
वंदामि अज्जवइरं, अपच्छिमो जो सुयहराणं।।

(ग) अपुहुत्ते अणुओगो, चत्तारि दुवार भासई एगो।
पुहुताणुओगकरणे, ते अत्थ तओ उ वोच्छिन्ना।।
देविंदवंदिएहिं, महाणुभागेहिं रक्खिअज्जेहिं।
जुगमासज्ज विभत्तो, अणुओगो तो कओ चउहा।।
माया य रुद्दसोमा, पिया य नामेण सोमदेव त्ति।
भाया य फग्गुरक्खिय, तोसलिपुत्ता य आयरिआ।।
णिज्जवणभद्दगुत्ते, वीसं पढणं च तस्स पुव्वगयं।
पव्वाविओ य भाया, रक्खिअखमणेहिं जणओ य।।

35. जह जह पएसिणी जाणुगम्मि पालित्तओ भमाडेइ।
तह तह सीसे वियणा, पणस्सइ मुरुंडरायस्स।।

– पिण्डनिर्युक्ति, गाथा – 498

36. नइ कण्ह-विन्न दीवे, पंचसया तावसाण णिवसंति।
पव्वदिवसेसु कुलवइ, पालेवुत्तार सक्कारे।।
जण सावगाण खिसण, समियक्खण माइठाण लेवेण।
सावय पयत्तकरणं, अविणय लोए चलण धोए।।
पडिलाभिय वच्चंता, निबुड्ड नइकूलमिलण समियाओ।
विम्हिय पंच सया तावसाण पव्वज्ज साहा य।।

– पिण्डनिर्युक्ति, गाथा 503-505

37. (अ) वही, गाथा 505
(ब) नन्दीसूत्र स्थविरावली गाथा, 36
(स) मथुरा के अभिलेखों में इस शाखा का उल्लेख ब्रह्मदासिक शाखा के रूप में मिलता है।

38. उज्जेणी कालखमणा सागरखमणा सुवण्णभूमीए।
इंदो आउयसेसं, पुच्छइ सादिव्वकरणं च।।
- उत्तराध्ययननिर्युक्ति, गाथा 119

39. अरहंते वंदित्ता चउदसपुव्वी तहेव दसपुव्वी।
एक्कारसंगसुत्तत्थधारए सव्वसाहू य।।
- ओघनिर्युक्ति, गाथा 1

40. श्रीमती ओघनिर्युक्ति, संपादक-- श्रीमद्विजयसूरीश्वर, प्रकाशन-- जैन ग्रन्थमाला, गोपीपुरा, सूरत, पृ. 3-4

41. जेणुद्धरिया विज्जा आगासगमा महापरिन्नाओ।
वंदामि अज्जवइरं अपच्छिमो जो सुअहराणं।।
- गाथा, 769

42. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा, 763-774

43. अपुहुत्तपुहुत्ताइं निद्दिसिउं एत्थ होइ अहिगारो।
चरणकरणाणुओगेण तस्स दारा इमे हुंति।।
- दशवैकालिक निर्युक्ति, गाथा 4

44. ओहेण उ निज्जुत्तिं वुच्छं चरणकरणाणुओगाओ।
अप्पक्खरं महत्थं अणुग्गहत्थं सुविहियाणं।।
- ओघनिर्युक्ति, गाथा 2

45. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा 778-783

46. उत्तराध्ययननिर्युक्ति, गाथा 164-178

47. एगभविए य बद्धाउए य अभिमुहियनामगोए य।
एते तिन्निवि देसा दव्वंमि य पोंडरीयस्स।।
- सूत्रकृतांगनिर्युक्ति, गाथा 146

48. उत्तराध्ययन टीका शान्त्याचार्य, उद्धृत बृहत्कल्पसूत्रम् भाष्य, षष्ठ विभाग प्रस्तावना, पृ. 12

49. वही, पृ. 9

50. बृहत्कल्पसूत्रम्, भाष्य षष्ठविभाग, आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर, पृ. 11

51. साव[1]त्थी उसभ[2]पुर सेय[3]विया मिहिल[4] उल्लु[5]गातीरं।
पुदिमंत[6]रंजि दस[7]पुर रहवीर[8]पुरं च नगराइं।।
चोद्द[1]स सोल[2]स वासा चोद्दसवीसु[3]त्तरा[4] य दोण्णि सया।
अट्ठावीसो[5] य दुवे पंचेव सया[6] उ चोयाला।।
- आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा 81-82

52. रहवीरपुरं नयरं दीवगमुज्जाण अज्जकण्हे अ।
सिवभूइस्सुवहिंमि पुच्छा थेराण कहणा य।।
- उत्तराध्ययननिर्युक्ति, गाथा 178

53. स्वयं चतुर्दशपूर्वित्वेऽपि यच्चतुर्दशपूर्व्युपादानं तत् तेषामपि षट्स्थानपतितत्वेन शेषमहात्म्यस्थापनपरमदुष्टमेव, भाष्यगाथा वा द्वारगाथाद्वयादारभ्य लक्ष्यन्त इति प्रेर्यानवकाश एवेति।।

– उत्तराध्ययन टीका, शान्त्याचार्य, गाथा 233

54. एगभविए य बद्धाउए य अभिमुहियनामगोए य।
एते तिन्निवि देसा दव्वंमि य पोंडरीयस्स।।

– सूत्रकृतांगनिर्युक्ति, गाथा 146

55. ये चादेशाः[4], यथा-- आर्यमङ्गुराचार्यस्त्रिविधं शङ्खमिच्छति-- एकभाविकं बद्धायुष्कमभिमुखनामगोत्रं च, आर्यसमुद्रो द्विविधम -- बद्धायुष्कमभिमुखनामगोत्रं च, आर्यसुहस्ती एकम्-- अभिमुखनाम गोत्रमितिः

– बृहत्कल्पसूत्रम, भाष्य भाग 1, गाथा 144

56. वही, षष्ठविभाग, पृ.सं. ५५-१७
57. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा 1252-1260
58. वही, गाथा- 85
59. जत्थ य जो पण्णवओ कस्सवि साहइ दिसासु य णिमित्तं।
जत्तोमुहो य ठाई सा पुव्वा पच्छवो अवरा।।

– आचारांगनिर्युक्ति, गाथा 51

60. सप्ताश्विवेदसंख्य, शककालमपास्य चैत्रशुक्लादौ।
अर्धास्तमिते भानौ, यवनपुरे सौम्यदिवसाद्ये।।

– पंचसिद्धान्तिका उद्धृत बृहत्कल्पसूत्रम्, भाष्य षष्ठविभाग, प्रस्तावना, पृ. 17

61. बृहत्कल्पसूत्रम, षष्ठविभाग, प्रस्तावना, पृ. 18

62. गोविंदो नाम भिक्खू...
पच्छा तेण एगिंदियजीवसाहणं गोविंदनिज्जुत्ती कया।। एस नाणतेणो।।

– निशीथचूर्णि, भाग 3, उद्देशक 11–सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, पृ. 260

63. (अ) गोविंदाणं पि नमो, अणुओगे विउलधारणिंदाणं।
णिच्चं खंतिदयाणं परूवणे दुल्लभिंदाणं।।

– नन्दीसूत्र, गाथा 81

(ब) आर्य स्कंदिल
|
आर्य हिमवंत
|
आर्य नागार्जुन
|

आर्य गोविन्द

- देखें नन्दीसूत्र स्थविरावली, गाथा 36-41

64. पच्छा तेण एगिंदियजीवसाहणं गोविंदणिज्जुत्ती कया। एस णाणतेणो। एव दंसणपभावगसत्थट्ठा।

- निशीथचूर्णि, पृ. 260

65. निण्हयाण वत्तव्वया भाणियव्वा जहा सामाइयनिज्जुत्तीए।

- उत्तराध्ययनचूर्णि, जिनदासगणिमहत्तर, विक्रम संवत् 1989, पृ. 95,

66. इदाणिं एतेसिं कालो भण्णति 'चउद्दस सोलस वीसा' गाहाउ दो, इदाणिं भण्णति -- 'चोद्दस वासा तइया' गाथा अक्खाणयसंगहणी। वही, पृ. 95

67. मिच्छादिट्ठी सासायणे य तह सम्ममिच्छादिट्ठी य।
अविरयसम्मदिट्ठी विरयाविरए पमत्ते य।।
तत्तो य अप्पमत्तो नियट्ठि अनियट्ठि बायरे सुहुमे।
उवसंत खीणमोहे होइ सजोगी अजोगी य।।

- आवश्यकनिर्युक्ति, (निर्युक्तिसंग्रह, पृ. 140)

68. आवश्यकनिर्युक्ति (हरिभद्र) भाग 2, प्रकाशक श्री भेरुलाल कन्हैया लाल कोठारी धार्मिक ट्रस्ट, मुम्बई, वीर सं. 2508, पृ. 106-107

69. सम्मत्तुपत्ती सावए य विरए अणंतकम्मसे।
दंसणमोहक्खवए उवसामंते य उवसते।।
खवए य खीणमोहे जिणे अ सेढी भवे असंखिज्जा।
तव्विवरीओ कालो संखज्जगुणाइ सेढीए।।

- आचारांगनिर्युक्ति, गाथा 222, 223 (नियुक्तिसंग्रह, पृ. 441)

70. सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्षपकक्षीण मोहजिनाः क्रमशोऽसंङ्ख्येयगुण निर्जराः।।

- तत्त्वार्थसूत्र (उमास्वति) सुखलाल संघवी, 9/47

71. (अ) णिज्जुत्ती णिज्जुत्ती एसा कहिदा मए समासेण।
अह वित्थार पंसगोऽणियोगदो होदि णादव्वो।।
आवासगणिज्जुत्ती एवं कधिदा समासओ विहिणा।
णो उवजुंजदि णिच्चं सो सिद्धिं, जादि विसुद्धप्पा।।

- मूलाचार (भारतीय ज्ञानपीठ) 691, 692

...एसो अण्णो गंथो कप्पदि पढिदुं असज्झाए।
आराहणा णिज्जुत्ति मरणविभत्ती य संगहत्थुदिओ।
पच्चक्खाणावसय धम्मकहाओ एरिस ओ।।

- मूलाचार, 278, 279

(ब) ण वसो अवसो अवसस्सकम्ममावस्सयंति बोधव्वा।
जुत्ति त्ति उवाअंत्ति ण णिरवयवो होदि णिज्जुत्ती।।